जल-समाधि

लेखक की अन्य रचनाएँ—

अनुरागिनी (उपन्यास)	४॥)
अभिताप उपन्यास)	४॥)
जूनिया (उपन्यास)	४)
एक सूत्र (उपन्यास)	३॥)
मदारी (उपन्यास)	५)
नूरजहाँ (उपन्यास)	५)
प्रतिमा (उपन्यास)	२॥।)
तारिका (उपन्यास)	३)
प्रगति की राह (उपन्यास)	४।)
मुक्ति के बन्धन (उपन्यास)	४)
चक्र-कान्त (उपन्यास)	३)
यामिनी (उपन्यास)	५)
नौजवान (उपन्यास)	५)
वरमाला (नाटक)	१॥।)
राजमुकुट (नाटक)	२)
अंगूर की बेटी (नाटक)	२।)
सुहाग बिन्दी (नाटक)	२।)
ययाति नाटक)	१॥।)
विष-कन्या (नाटक)	प्रेस में

आत्माराम एण्ड संस, काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

जल-समाधि

[सामाजिक उपन्यास]

लेखक

गोविन्दवल्लभ पंत

१९५१

आत्माराम एण्ड संस

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

काश्मीरी गेट

दिल्ली ६

रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मूल्य ४)

काश

जल-समाधि

१

"अभागिनी जा, निकल तूने मेरी कोख को कलंकित किया, कुल को दाग लगाया, अब किसी प्रकार नहीं रह सकती तू इस घर में।"

असह्य मानसिक और शारीरिक कष्ट से पीड़िता वह नव-प्रसूता बोली—"माँ!" उस केवल मात्र संबोधन में ही उसके अन्य हृद्गत भावों की व्यंजना उसकी सिसकियों द्वारा हुई। वह दबी हुई थी और धरती पर मानवी करुणा को जगाने के लिए निर्भय होकर रो रहा था समाज के मानापमान से सर्वथा अनभिज्ञ उसका नवजात शिशु। मानव नहीं जागा, पास बँधी एक गाय रँभाने लगी।

"जल्दी कर कलमुँही, फिर प्रातःकाल हो जायगा और सारा गाँव जाग उठेगा।"—माता ने द्रुत गति से, पर बड़े धीमे स्वर में कहा।

प्रसूता दिशाओं की शून्यता में आश्रय खोजती-सी प्रतीत हुई और उसका बालक ज़ोर-ज़ोर से रो रहा था।

"उठा, इस पाप के घड़े को ले जा।"—माता ने कंबल में लिपटे हुए उस बालक को उठाकर उसको दिया और द्वार खोलकर उसे बाहर धकेल दिया।

प्रसूता ने रोते-रोते फिर माता की ओर देखकर कहा—"कहाँ जाऊँ?"

"मैं कहाँ बताऊँ? जहाँ से लाई है इसे, वहीं ले जा। जा, जहाँ मुँह काला किया, उसी से पूछ कि क्या करना है। इस बालक को लेकर कदापि यहाँ लौट आने का विचार न करना। जब तूने कुल की मर्यादा

छोड़ दी तो इस गाँव को छोड़ देने में तुझे क्या मोह है ?"—माता ने गौशाला बंद कर उसमें ताला दे दिया।

प्रसूता ने ढककर बालक को छाती से लगाया, पर उसके पैर अभी तक आगे को नहीं बढ़ सके थे। वह फिर प्रतीक्षा में थी शायद माता के दया लौट आय। उसने कहा—"इस भयानक अन्धकार में ?"

"तेरे पापों की आग नहीं जल रही क्या ?"

"लेकिन इस शिशु ने कौन पाप किये हैं ?"—रोते हुए उसने पूछा—"माँ !···" उसने माता के पैर पकड़कर पूछा।

"मेरे तेरे साथ के सभी सम्बन्ध समाप्त हो गये !"

"मैं तुम्हारे ही शरीर का भाग हूँ।"

"जिसके सड़ जाने पर मैंने काटकर उसे फेंक दिया। जा, जल्दी कर।"—माता बहुत दूर तक उसका हाथ पकड़ उसे नीचे को जाने वाले मार्ग में पहुँचा आई।—"खबरदार! अगर लौटकर आई तो रेतीरौ में तेरे गले में पत्थर बाँध धक्का देकर डुबा दूँगी।"

प्रसूता चली गई। माता कुछ देर उसके प्रस्थान को देखती रही, जब वह दूर पर के एक पहाड़ के मोड़ में अदृश्य हो गई तो उसने धीरज की साँस ली और अपने घर लौट गई।

गौशाला के निकट ही उनका घर था, दो मंजिला, पत्थरों से छाया हुआ। बच्चों को छोड़कर और सभी सोते हुए जागने का अभिनय कर रहे थे।

गृह-स्वामी का नाम था—ब्रह्मदत्त शर्मा। पत्नी के घर में पहला पैर रखते ही उन्होंने बहुत धीमे स्वर में पूछा—"क्या समाचार है ?"

एक कोने में सिमटती हुई पत्नी बोली—"एक गिलास में गौमूत्र छिड़किये मेरे ऊपर पहले। उस कलंकिनी की यह छूत गौमूत्र से भी धुलेगी या नहीं।"

धड़कते हृदय से शर्मा जी ने पत्नी के ऊपर गिलास में पड़े हुए पद्म की पाती से गौमूत्र छिड़का। कुछ पत्नी ने चुल्लू में लेकर आचमन

भी किया। फिर भीतर को पैर बढ़ाती हुई बोली—"लड़का हुआ है अभागिनी के। मैंने तभी कहा था तुम से इसे ससुराल ही में रहने दीजिए।"

ब्रह्मदत्त जी माथा पकड़कर बैठ गये—"क्या होगा अब?"

"सारे इलाके में बात कभी से फैली हुई है। आप समझते हैं क्या सूखे पत्तों में आग छिपी रहती है? फिर बहुत से लोगों का तो दिन भर का धंधा ही यह है, समाज की इन दुर्बल कथाओं को खूब नमक-मिर्च लगाकर एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाना।"

"कुछ पुआल-बिछौने, दूध-पंजीरी का इन्तज़ाम किया?"

"कुछ नहीं करेंगे।"—ताड़िता नागिन-सी वह बोली—"इस तरह क्या कलंक का पोषण करेंगे। मेरा वश चलता तो गला घोंटकर दोनों को मार डालती।"

"हैं! हैं! यह क्या कहती हो? अंग्रेज़ के राज में! कोई सुन लेगा, तो फिर सारे कुटुम्ब को बँधकर जाना पड़ेगा कचहरी में।"—शर्मा जी पत्नी के होंठों पर हाथ रखने को चले।

पत्नी पीछे को हटती हुई बोली—"नहीं, नहीं, जबतक नहा नहीं लेती तबतक छूने लायक नहीं हूँ। ज़रा कुछ पूरब में उजाला हो तो जाऊँ नदी की तरफ़।"

ठंडी साँस लेकर ब्रह्मदत्त जी बोले—"फालतू बातें इतनी कर रही हो, काम की एक भी नहीं। कहाँ है भागा?"

"उस अभागिनी का नाम किसने भाग्यवती रक्खा। उस दिन अगर मालूम होता तो सौर घर में ही उसके मुँह में कपड़ा ठूँस देती।"

"फिर वही बक-बक। बीते को जब बिगाड़ नहीं सकतीं, तो आगे को तो सुधारो। भागा कहाँ है?"

"मैंने घर से निकाल दिया उसे।"

"कहाँ गई वह?"

"मैंने कह दिया जहाँ से यह लड़का लाई है वहीं जा।"

"वह गई ?"

"हाँ, गई।"

"वह रक्खेगा उसे ?"

"रक्खेगा क्यों नहीं ? मैंने कह दिया वह उसके साथ कहीं देस-परदेस को चली जाय।"

"भागा की माँ, देखो तुम्हें कुछ और करना था। जल्दी में तुमने मुझ से पूछा भी नहीं, तुम्हें कुछ और ही करना था।"

"क्या करना था ? मैं समझ गई तुम्हारा मतलब। मुझे अंग्रेज के राज का भय दिखाते हो और अपना गोरा में के राज की बात करने लगे। हूँ, तुम्हारा मतलब है बच्चे को कहीं फेंक दिया जाता और तुम माथे में सफेद चंदन का टीका दे, हाथ में जनेऊ लपेट गायत्री का जप कर शुद्ध हो जाते।"—गृहिणी बोली।

"हे भगवान् कर्म का लेख बड़ा विचित्र है, भागा की माँ !"

"नहीं, मैं उसके नाम के संसर्ग से नहीं पुकारा जाना चाहती।"

"वह सब से बड़ी लड़की। पिछले बीस बरसों की आदत एक ही दिन में कैसे छूट जायगी ? मैं फिर यही कहूँगा, मेरी अकल से काम नहीं किया तुमने ? जब लोग पूछेंगे, भागा कहाँ गई ? तो क्या जवाब है तुम्हारे पास ?"

"मैं कह दूँगी, वह गाँव के एक छोकरे के साथ मुँह काला कर चली गई। उसका पाप उसके साथ चला गया। लेकिन तुमने तो उसके पाप में तमाम कुल-पितरों को डुबा देने की बात सोची है। इस तरह आँखें बंद कर क्या हम भगवान् को छिपा सकते हैं ?"—एकाएक गृहिणी किसी आहट से चौंक उठी। वह अभी तक मकान के बाहरी कमरे ही में थी। उसने धीरे-धीरे द्वार खोलकर बाहर के अन्धकार में दूर तक अपनी नजर दौड़ाई। कहीं कुछ न था, शायद कोई कुत्ता या गीदड़ आँगन से होकर गया था।

दोनों पति-पत्नी चुपचाप कमरे के अन्धकार में खड़े थे। मिट्टी

का तेल तब गाँवों में नहीं पहुँचा था और सरसों का तेल इतनी इफ़रात से नहीं था। संध्या के समय ठाकुरघर में कुछ देर के लिए एक दीपक जलता था और एक दीपक गृह-स्वामी की बैठक में। रसोईघर में बहुधा चूल्हे में जलने वाली लकड़ियों से प्रकाश का भी काम ले लिया जाता था और भीतर-बाहर उजाले के लिए तेल की लकड़ी का उपयोग होता था। वह लकड़ी चीड़ के पेड़ों से प्राप्त होती है। तारपीन जिससे बनता है।

भीतर बच्चे सो रहे थे। अचानक उनका बड़ा लड़का, जो दस वर्ष का था, नींद से जाग उठा। विचार और भावनाएँ वायुमंडल में घुलकर बोलने लगती हैं। बालक को घर में कोई शून्यता-सी चुभने लगी। बाहर के कमरे में धीरे-धीरे उसके माता-पिता बातें कर रहे थे। वह रो पड़ा और भीतर से बाहर के कमरे में चला आया।

बालक विह्वल होकर बोला—"माँ! माँ!"

"सो जाओ बेटा, अभी बहुत रात है।"—पिता ने उसे भीतर को ले जाते हुए कहा।

"माँ कहाँ हैं?"—बालक भीतर जाने को असम्मत हुआ।

"यहीं हूँ बेटा।"—माता ने उत्तर दिया।

"दीदी कहाँ हैं?"—बालक ने फिर पूछा।

"नीचे के मकान में शिरोमणि काका के यहाँ गई है।"—पिता ने उसे आश्वासन देते हुए कहा।

बालक को विश्वास नहीं हुआ, पर वह पिता के साथ भीतर के कमरे में फिर सोने को चला—"काका के यहाँ क्यों गई?"

"किसी काम से गई है। सुबह होते ही आ जायगी। सो जाओ बेटा।"

पंडित जी के उत्तर से पुत्र का कौतूहल शान्त नहीं हो सका। वह सोने की चेष्टा करने लगा।

पंडित जी सोचने लगे—"मन की व्यग्रता के कारण पुत्र को ठीक-

ठीक उत्तर नहीं दिया गया। भागा सुबह उठकर आवेगी—यह बड़ी भयानक बात उनके मुख से निकल गई। नहीं, उसे लौटकर नहीं आना होगा।"

इतने ही में बालक फिर उठ बैठा—"नहीं पिता जी, दीदी वहाँ नहीं गई हैं, फिर कहाँ गई हैं, बता दीजिए।"

इस बार पंडित जी ने अपने को सही कर उत्तर दिया—"बेटा, दीदी मर गई!"

बालक चिल्ला उठा—"मर गई! कैसे मर गई? वह तो कुछ भी बीमार न थी।"

"वह रेतीरौ के गहरे पानी में डूबकर मर गई।"

"दीदी! दीदी!"—बालक रोते हुए अँधेरे में इधर-उधर दौड़ने लगा।

बाहर के कमरे से माता यह सब सुन रही थी। उसने डाँटकर कहा—"उस अभागिनी को अगर तू फिर रोया तो मैं तुझे भी वहीं फेंक दूँगी।"

बालक की अस्फुट कल्पना यह सब न समझ सकी। वह भय से त्रस्त होकर बिस्तर में पड़ा सिसकने लगा।

पंडित जी इस भयानक विपत्ति में भगवान् को पुकारकर कहने लगे—"त्राहिमाम्! त्राहिमाम्!"

उस गाँव का नाम था मल्ला देवद। जिला अल्मोड़े में चिभास नदी की हरी-भरी घाटी में बसा हुआ था। ब्रह्मदत्त जी ने एकांत में अपना अलग नया मकान बनवाया है। पूर्वजों का पुराना मकान, कुछ फासले पर पूरब की ओर है। दो कमरे उनके हिस्से के भी हैं उसमें उनके सभी बांधवों ने अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार नये मकान बनवा लिये हैं। दस साल पहले भागा के विवाह के अवसर पर पंडित जी ने इस मकान का गृह-प्रवेश किया था।

ब्रह्मदत्त जी अपने पिता की अकेली संतान हैं। पास-पड़ोस के

गाँवों में पुरोहिताई करते हैं। विवाह-जनेऊ आदि कराने में उन्हें अच्छा द्रव्य प्राप्त हो जाता है, संपन्न लोग उनके यजमानों में से हैं। कुछ खेती-पाती भी होती है।

उनके पूर्वजों को कत्यूरी राजाओं का आश्रय प्राप्त था। सरयू नदी की घाटी में उन्हें उपजाऊ भूमि जागीर में मिली हुई थी। लेकिन ब्रह्मदत्त जी के पितर कुछ पुश्तों से वहाँ छोड़कर विभास नदी की घाटी में आकर बस गये थे।

विभास नदी के निम्न भाग में तल्ला देवद है। वह भी ब्राह्मणों का ही गाँव है। उनको मल्ला देवद के पंडित लोग ज़रा निम्न श्रेणी का मानते हैं। रोटी उनके हाथ की खा लेते हैं, पर भात नहीं खाते। ब्याह-सम्बन्ध भी नहीं करते।

तल्ला देवद मल्ले से लगभग एक हज़ार फीट की निचाई पर होगा, लेकिन यह अन्तर एकाएक नहीं हुआ है। दोनों गाँवों के बीच के कोई आधे मील की दूरी में भूमि धीरे-धीरे ढालू होती चली गई है।

विभास नदी दोनों गाँवों के पार्श्व से इठलाती-बल खाती हुई चली जाती है। उसके दोनों किनारों पर खेती होती है। धीरे-धीरे भूमि के समतायुक्त ढाल के कारण, सिंचाई का सुभीता है, नदी और गाँवों के बीच से ज़िला बोर्ड की पगडंडी की सड़क जाती है।

तल्ले देवद से आधे मील नीचे एक शिव-मन्दिर है विभास नदी के किनारे। उससे कुछ ऊपर घने चीड़ के वृक्षों से हरित एक विशाल पर्वत ने विभास की सहज-सीधी गति को रोककर उसे एक मोड़ दे दिया है। दक्षिण को बहती हुई विभास वहाँ से पूर्व की दिशा पकड़ती है। जिस मोड़ पर विभास की धारा कुछ ऊँचाई पर से गिरती है, वहाँ बहुत गहराई है। वह स्थान देवीरौ के नाम से प्रसिद्ध है। कभी-कभी जीवन के नैराश्य से धीरता-पूर्वक सामना न कर सकने वाले व्यक्ति उस गहराई में कूदकर आत्म-हत्या कर लेते हैं।

सड़क से ही वह स्वच्छ-व्यवस्थित, हरित-भरित शिव-मन्दिर

यात्री का मन खींच लेता है। उसके भीतर किसी के व्यक्तित्व की छाप मन्दिर के पग-पग पर प्रतिफलित दिखाई देती है। मन्दिर का आँगन पत्थरों से पटा हुआ है। स्थान-स्थान पर बहुवर्षी और एकवर्षी फूलों के पेड़ अनुकूल ऋतुओं में अपनी शोभा से मन्दिर का शृंगार करते हैं। इसके सिवा नींबू, नारंगी, अखरोट और अनार दाड़िमी के वृक्षों से भी वह स्थान सुशोभित है।

मन्दिर के निकट ही एक मकान में देवगिरी नामक एक गृहस्थ साधू रहते हैं। गृहस्थ क्या कहें अब उनसे। पत्नी कई वर्ष हो गये सुर-धाम पधार गईं। एकमात्र लड़का परदेस में नौकरी करता है। देवगिरि बाबा ही मन्दिर के पुजारी, चौकीदार, स्वामी और प्राण हैं।

जाड़ा हो या गरमी सुबह चार बजे बाबा जी उठकर विभास नदी के उस पार जंगल जाते हैं। फिर नदी में आकर स्नान करते हैं, इसके अनन्तर संध्या-वंदन कर मन्दिर में पूजा-आरती समर्पण करते हैं। फिर देवता के लिए भोग तैयार कर उन्हें भोग लगाते हैं। कोई अतिथि-अभ्यागत आया हो तो उसकी सेवा कर अन्त में आप भोजन पाते हैं।

मन्दिर के आस-पास उसे चढ़ाई हुई काफ़ी भूमि है। दिन में अवकाश के समय बाबा जी अपने हाथ से खेती करते हैं। फल-फूलों के जितने भी पेड़ वहाँ हैं, वे सब बाबा जी के ही उद्यम और कौशल की उपज हैं। साल भर के लिए आवश्यकता से अधिक अनाज पैदा हो जाता है। फल-फूलों का सदैव ही सं--- परिपूर्ण रहता है। साग-सब्ज़ी अपने खर्च से बहुत अधिक हो जाती है। अपने और अतिथि-अभ्यागतों में व्यय होने के बाद जो बच जाता है, देवगिरि जी वह सब आस-पास के दीन-दरिद्र लोगों को दान कर देते हैं।

उनकी आयु सत्तर वर्ष से अधिक है। देखने में हृष्ट-पुष्ट और हृदय में युवकों-का-सा उत्साह और शरीर में वैसी ही ताक़त रखते हैं। कभी किसी ने उन्हें किसी प्रकार की निराशा में डूबा हुआ नहीं

देखा होगा। दूर-दूर के ग्रामों के लोग उनके दर्शन के लिए आते थे, वे किसी को निराश नहीं भेजते थे। जो भी आता उनसे शरीर और मन दोनों के लिए कुछ-न-कुछ पाकर ही जाता था।

वे पढ़े-लिखे विशेष नहीं थे। आडम्बर से सर्वथा चिढ़ थी उन्हें। बालों में सफ़ेदी छा चली थी पर दृष्टि में कोई दोष प्रकट नहीं हुआ था। छोटे अक्षरों में रोज़ रामायण का पाठ बखूबी करते थे और काफी दूर से आने-जाने वाले लोगों को पहचान लेते थे। दाँतों में कोई विकार नहीं था। खूब दृढ़ और साफ़—कठा अखरोट मुँह में डालकर आसानी से तोड़ डालते और गन्ना छील-छीलकर खाते थे।

अध्यात्म और दर्शन की गूढ़ शब्दावली से अपरिचित थे, पर विचारों में सुलझे हुए थे। संसार को देखने के लिए उनका अपना एक विशेष दृष्टिकोण था, जो सर्वसाधारण के लिए सहज बोधगम्य था। भाषा के कठिन और दुर्बोध जाल से वे विमुक्त थे, अपनी सरल बातों में वे जो कहते बड़े-बड़े उसका लोहा मानते थे। बड़ी तीव्र स्मरण-शक्ति थी उनके। एक बार कुछ देर के लिए भी जिससे परिचय हो जाता, कभी न भूलते उसे। लोग कहते थे उनके अन्तर-नेत्र जगे हुए हैं।

काल की संगति में एक-एक क़दम उनका नपा-तुला था। कभी व्यर्थ की बकवादों में समय अतिवाहित करते हुए नहीं देखे गये वे। जड़-जीव, गोरे-काले, धनी-निर्धन सबके भीतर भगवान् की महिमा है—ऐसा उनका ज्ञान था। ज्ञान ही क्यों वे निरंतर उनमें इसके दर्शन करने के अभ्यासी भी थे। उनके जीवन के दर्शन का यही सूक्ष्म और सरल मूलमंत्र था। वे कहते थे—इस भावना के टूट जाने पर ही काम, क्रोध आदि मनुष्य पर हमला कर देते हैं। यदि इस भावना में मानव प्रत्येक साँस में जागृत रहे तो उसे कभी कोई दुख ही न हो। वह अपने चारों ओर अनन्त प्रेम का ऐसा कवच तैयार कर लेगा कि महाकाल का प्रहार भी उसे कोई पीड़ा न दे सकेगा।

संयम से नियमों का प्रतिपालन करते थे वे। उचित भोजन, उचित परिश्रम और उचित विश्राम का रहस्य समझ गये थे वे। इसीलिए कभी बीमारी उनका स्पर्श भी नहीं करती थी। सारी सृष्टि के लिए मंगल की कामना करते रहते थे वे। जब मल्ले देवद के लंबी धोतीवाले ब्राह्मण तल्ले देवद के छोटी धोतीवाले ब्राह्मणों के पूजा-पाठ में व्याकरण और कर्मकाण्ड की भूलों का उल्लेख करते थे तो देवगिरि कहते थे—"भाई, इन बाहरी बातों का क्या मूल्य है अगर मन में श्रद्धा है तो।" और जब तल्ले देवद के भूसुर मल्ले देवद के ब्राह्मणों के पाखंड और अभिमान को लेकर भाँति-भाँति की बातें करते तो भी देवगिरि जी कहते—"भाई, ब्राह्मण को अपने दोषों का वर्णन करना चाहिए, दूसरों के गुण ही देखकर ग्रहण करने उचित हैं। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु छाया और प्रकाश के मेल से ही भारी वस्तु है। बिलकुल काला भी धरती में कुछ नहीं है और बिलकुल उजला भी कोई नहीं। जब हम दूसरे की निंदा करते हैं तो उसके अवगुण हमारे भीतर जाग जाते हैं और जब हम दूसरे के गुण देखते हैं तो स्वयम् हम पवित्र हो जाते हैं।"

२

वही अन्धकार ! और वही रास्ता—उसी पर साल-भर पहले एक रात को तल्ले देवद का जैकिशन उसे बहका ले गया था। उस दिन एक अन्धा पागलपन उसके साथ था, एक विष की मूर्च्छा उसका हाथ पकड़कर ले चली थी। अँधेरे की ठोकरें, वन्य-पशुओं की हिंसा, देवीरौ का भूत और इन सब से भयानक समाज—सबकी उपेक्षा कर वह कठपुतली की तरह, लोक-परलोक, स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य सभी कुछ भूलकर खिंची हुई चली गई थी।

आज उसका साथी था उसका वह नवजात शिशु ! कृष्णपक्ष के उस घने अन्धकार में मानो उसके पाये भीम आकार में सजीव हो उठे थे। कम्बल में ढककर यत्नपूर्वक उस शिशु को छाती से लगाये भागा तल्ले देवद की ओर चली जा रही थी। फागुन बीत रहा था। देवीरौ पर्वत के वन से चीड़ के पेड़ों से सनसनाती हुई पवन चल रही थी। अन्धकार की तरह भागा शीत के भय से भी विमुक्त हो गई थी।

वह नंगे पैर मार्ग की ठोकरों और काँटों का सामना करती जा रही थी। वह अल्पवस्त्रा, नंगे आकाश की ओस और हवा की ठण्डक को तुच्छ समझ बढ़ रही थी। वह कृशांगी उस यात्रा के श्रम को सरलता से सहन कर रही थी। गीदड़ बीच-बीच में चिल्ला रहे थे, उनके उस कटु रव में उसके लिए कोई भय या आशंका नहीं थी। रेतीरौ की प्रेत-बाधा—उससे उसका साक्षात् हो जाता, यह मना रही थी वह। अपने जीवन को नगण्य समझकर वह उस शिशु की रक्षा के लिए प्राण-पण से चेष्टा कर रही थी।

"मैं पापिनी हो सकती हूँ लेकिन···"—उसने उस शिशु को भयता से छाती से लगाकर कहा—"यह निर्दोष है। मैं बचाऊँगी इसे चाहे

जैसे भी हो "

तल्ले देवद का जैकिशन, उसकी आयु लगभग पच्चीस वर्ष की होगी। जब वह दस वर्ष का था तब उसकी माता का देहांत हो गया था और जब उसने अट्ठारहवें वर्ष में पैर रक्खा तो पिता जी स्वर्ग को प्रयाण कर गये। अभी तक अविवाहित ही है। कौन उसके विवाह की चिन्ता करता? कोई उसे कन्या देने को भी तैयार न था।

पिता जी मरते समय उसके लिए कुछ खेती छोड़ गये थे और दस-बीस घर क्षत्रियों के यहाँ यजमानी के। उसके पिता बहुत पढ़े-लिखे तो थे नहीं, पर सच्चे, सरल और धर्मभीरु थे। पूर्वजों से कर्म-काण्ड की जो शिक्षा-दीक्षा पाई थी, उसे बिना कुछ घटा-बढ़ाकर जन्मभर उन्होंने अपनी जीविका चलाई। जहाँ तक हो सका उसी पर जैकिशन को भी चलना उनका मुख्य ध्येय था। वे जबतक जीवित रहे, तबतक जैकिशन उनकी दृष्टि में बँधा हुआ रहा। बुद्धि का तीव्र था वह। घर ही पर पिता जी ने उसे थोड़ी-बहुत जितनी विद्या उन्होंने सीखी थी, वह सब पुत्र को सिखा दी। पुरोहिताई में भी उसे निपुण करा दिया। कण्ठ-स्वर मीठा था जैकिशन का। मंत्रों के उच्चारण की दुर्बलता उसकी स्वर-लहरी में स्नात हो छिप जाती थी।

माता-पिता दोनों की मृत्यु से पूर्ण स्वतन्त्र हो गया जैकिशन, किसी का अंकुश न रहा न किसी का डर। वैसे पूजा-पाठ, स्नान-व्रत में कोई कमी नहीं आई उसके। जितने घर यजमानी के पिता जी छोड़ गये थे, वे सब-के-सब उसने सँभालकर रक्खे ही थे। अपने कार्य में दक्ष, सौम्य-विनीत और सभा-चतुर था वह। दूसरों की भलाई के लिए सदैव तत्पर भी रहता और अपनी बात का धनी भी था। आस्तिक बुद्धि का था, देवता और पितरों में भक्ति थी, पुरोहिताई के कामों में बहुधा पुस्तक को देखता भी न था।—मंत्र कंठस्थ थे।

फिर क्या कसर थी उसमें? उसका कंठ-स्वर ही उसका शत्रु हो गया।

गाने-बजाने में उसकी बड़ी प्रीति थी। तल्ले-मल्ले देवद ही में नहीं, पास-पड़ौस के जितने भी गाँव थे, जहाँ कहीं गाने-बजाने की सभा जुटती, बिना जैकिशन के अपूर्ण और शून्य रहती। होलियों में तो जैकिशन शिव-रात्रि के बाद से कभी कोई रात अपने घर नहीं सोता था।

उसके गाने-बजाने की एक बैठक थी देवीरौ का शिव-मन्दिर। जिस दिन जैकिशन के मन में गीत की उमंग जागती, उस दिन वह सीधा मन्दिर में जा पहुँचता और वहाँ गाने लगता। देवगिरि को भी संगीत से प्रेम था, वे उसे भक्ति के जागरण के लिए एक साधन समझते और जैकिशन—गायक जैकिशन के लिए उनके हृदय में एक स्नेह था।

संगीत के प्रेम में जैकिशन ने चरस पीना सीख लिया। पहले थोड़ा-थोड़ा पीता था। बाद को तो बेहिसाब, दिन-भर और रात को भी नशे में उसकी आँखें लाल और चढ़ी हुई दिखाई देती थीं।

कोई कमी नहीं थी उसे चरस की। फसल में खेतों में जाकर दिन-भर उसका यही काम था भंग की मंजरियों को हाथों में मसल-मसलकर चरस जमा करना। संगीत-मण्डलियों में जहाँ भी जाता चरस की बत्तियों में अपना कर वसूल करता। दूर-दूर के गाँवों से खरीदकर भी लाता। मन्दिर में जो साधु-सन्त आते बड़ी उदारता से वह उन्हें भी पिलाता और कभी-कभी उनसे प्राप्त भी करता।

देवगिरि जी नियमित रूप से चरस नहीं पीते थे, लेकिन कभी-कभी जाड़ों में एक-आध दम लगा लेते थे। वे जैकिशन को उसके इस नशे के लिए कभी-कभी बहुत समझाते और कभी-कभी जब जैकिशन के चरस का राशन खत्म हो जाता, वह मुँह लटकाए बेचैन होकर इधर-उधर घूमता तो देवगिरि जी एक गाड़ी उपदेशों के साथ एक टुकड़ा चरस का अपने संग्रह में से उसे दे देते।

चरस की दम लगाकर जैकिशन कभी-कभी मन्दिर में संगीत की

एक अलौकिक धारा बहा देता। वह अपने को भूलकर रागिनी में ऐसी सजीवता भर देता कि सारा श्रोता-समाज अपनी चेतना खो देता। भागा के लिए उसके दुर्भाग्य का वह पहला दिन था, जब उसने एक दिन जैकिशन को आत्मविस्मृत होकर मन्दिर में गाते सुना। वह गीत उसके प्राणों में चुभ गया मछली के काँटे की भाँति, उसने उसे खींचा—वह बाहर नहीं निकला। भागा के हाथ की पूजा-सज्जा देवता के शीर्ष में चढ़ने के बदले उसके पैरों के पास गिर पड़ी।

अभागिनी भागा, विवाह के छै ही महीने भीतर, विधवा हो गई थी। संसार के समस्त रंगों से दूर हो रहने का उसे कठोर निषेध मिला। ससुराल के निरादर और लाञ्छित्व्य से बचाने के लिए पिता ने उसे अपने यहाँ बुला लिया था, लेकिन उसके भाग्य का लेख किसी को ज्ञात न था। जल्दी से पूजा की थाली उठाकर भागा ने इधर-उधर देखा। किसी की भी दृष्टि उसकी तरफ नहीं थी, केवल वह गायक भागा की इस चूक का उपहास कर रहा था। भागा ने पराजय स्वीकार की और उसे ऐसा जान पड़ा जैसे जैकिशन ने अपने उज्ज्वल विस्फारित नेत्रों से उसकी पूजा की थाली सहित अपनी दृष्टि से अपने मानस में खींच लिया।

भागा पूजा कर घर लौट आई, लेकिन जैकिशन के उस गीत का काँटा उसके हृदय से बाहर नहीं निकल सका। उसका चित्त चलायमान हो गया, दिन-रात, समय-असमय उसी गीत को वह सुनने लगी। फिर एक-दो बार उसने जैकिशन को मन्दिर में देखा। जैकिशन ने उसके साथ बोल-चाल शुरू की, लेकिन वह माथा नीचा कर चली जाती। जैकिशन तीव्रता के साथ उसकी ओर आकृष्ट हुआ और एक दिन उसे पाप की ओर खींच ले गया।

× × ×

भागा उस अँधेरी रात में जाकर जैकिशन के पास खड़ी हो गई और उसने धीरे-धीरे द्वार खटखटाया।

भीतर से जैकिशन ने झिड़ककर कहा—"कौन है ?"

बड़ी पीड़ा व्यक्त कर मंदस्वरों में भागा बोली—"मैं हूँ।"

"नाम नहीं है क्या तुम्हारा कुछ ?"

भागा सन्न रहकर सोचने लगी, उसका शिशु फिर जोर-जोर से रोने लगा। जैकिशन की इस बनावट को देखकर तो उसके होश गुम हो गये।

अचानक जैकिशन फिर भीतर से बोला—"कौन भागा ?"

रोती हुई आवाज में भागा ने उत्तर दिया—"हाँ, द्वार खोलो।"

"क्या काम है ?"—उसने द्वार नहीं खोले।

"तुम्हारे कारण मुझे मेरे माता-पिता ने घर से निकाल दिया है। जल्दी से द्वार खोलो। इस बच्चे की रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है। बड़ी ठंडी हवा बह रही है।"

"कैसा बच्चा ?"

"यह तुम्हारा बच्चा और कैसा बच्चा ?"

"यह मेरा बच्चा है, इसका भी क्या कोई सबूत है ? भागा, अगर मैं तुम्हारे स्थान में होता तो इस कलंक के टीके के गले में बड़े-बड़े पत्थर बाँधकर देवीरों की गहराई में डुबा देता।"

"राम-राम ! तुमने यह क्या कह दिया ? मैं तुम्हें भगवान का भय करने वाला व्यक्ति जानती हूँ। निश्चय तुम यह नींद में बक रहे हो। जाग उठो, इस बालक के प्राण बचाने हैं हमें।"

"मैं नहीं जानता यह किस का बालक है ?"

"यह तुम्हारा ही बालक है।"—बड़ी दृढ़ता से भागा बोली।

"कभी नहीं, जो नारी अपने विवाहित पति की उपेक्षा कर सकती है—उसके लिए जैसा फिर एक, वैसे ही अनेक।"—जैकिशन ने सोए-सोए ही कहा।

भागा रो पड़ी—"भगवान् की शपथ खाकर कहती हूँ, यह बालक तुम्हारा ही है। लो इसे सँभालो, इसका पालन करो। मैं अपने लिए

नहीं कहती, मैं चली जाऊँगी ।"

"खूब, दूध की छाती प्रकृति ने तुम्हें दी है, यह क्या मेरा अँगूठा चूसकर प्रतिपालित होगा ?"

"द्वार खोलो, नहीं तो मैं चिल्ला-चिल्लाकर सारे गाँव को जगा दूँगी। कहूँगी इसने एक विधवा नारी को पाप के पथ में घसीटा है और अब यह उसके प्रति अपने उत्तरदायित्व से मुँह मोड़ रहा है।"—रोष में भरकर भागा बोली।

जैकिशन उठकर द्वार के पास चला आया पर उसने उसे खोला नहीं—"भागा, तुम्हारी इस धमकी से तो मैं डरता नहीं हूँ। पाप के रास्ते में मैं लाया तुम्हें या तुमने मुझे अपने इन जादू-भरे नेत्रों से बहका दिया ? मेरा बरसों का पूजा-पाठ सब चौपट कर दिया। इसलिए कृपा करो, जाओ, मुझे प्रायश्चित्त करने दो।"

"इस बालक की प्राण-रक्षा ही तुम्हारा प्रायश्चित्त है, तुम्हें मैंने बहकाया ? कदापि नहीं, भगवान् ने नारी को हृदय से कोमल बनाया है, पर उसके अधर शिला की रचना हैं और तुमने कैसी मीठी-मीठी बातें उस दिन कही थीं, जब तुमने मुझे उस अँधेरे अभिसार के लिए राज़ी किया था। वे कोमल अधर तुम्हारे और हृदय ऐसा वज्र-पाषाण ! दया करो, हमें शरण दो। मैं रात-दिन तुम्हारी सेवा करूँगी। इस बालक के प्राण बचाओ।"—बड़ी दीनता से भागा ने कहा।

"शास्त्र के विरुद्ध एक पर-नारी को मैं अपने घर में रख लूँ ? दुनिया क्या कहेगी ? मैं घर-घर लोगों के विवाह के शुभ कर्म में आचार्य बनता हूँ। अपने ही यहाँ विवाह का आदर्श रच लूँगा तो कौन मुझे प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखेगा। नहीं भागा, यह सब कुछ नहीं हो सकता। तुम लौट जाओ। तुम्हें घर में रख लेने पर मेरी जीविका का जो पैतृक सहारा है वह सब चौपट हो जायगा, तुम मेरे ऊपर दया करो।"

"तो चलो कहीं परदेस को चलें। मैं मजदूरी कर अपना पेट

पाल लूँगी, तुम्हें भी कहीं-न-कहीं कोई काम मिल जावेगा। वहाँ हमें कोई नहीं पहचानेगा ?"

"भगवान् से क्या कुछ छिपा है ? मुझे अब और अधिक पाप में मत सानो।"

भागा खड़ी-खड़ी थक गई थी। जैकिशन के भीतर कठोर राक्षस को जागा हुआ देखकर वह बैठ गई—"अच्छा द्वार खोलो, दो-चार दिन के लिए शरण दो। स्थिर चित्त होकर जो उचित विचार सोचकर बताओगे वही करूँगी।"

"नहीं, द्वार नहीं खुल सकता, इस विचार को निश्चित, उचित और अटल ही समझो, तुम एक परायी नारी, कैसे शरण दूँ तुम्हें ? जल्दी करो, लौट जाओ। कहीं सुबह हो गई और सड़कों पर लोग चलने-फिरने लगेंगे तो फिर मुश्किल हो जायगी।"—जैकिशन ने बहुत स्थिर शब्दों में कहा।

"मुझे किसी का भय नहीं। मैं नहीं डरती समाज से। तुम द्वार न खोलोगे तो मैं यहीं पर धरना देकर मर जाऊँगी।"—भागा ने फिर बड़ी तीव्रता से कहा।

"तुम्हें न हो समाज की डर ! तुम्हारे पिता जी पर क्या बीत जायगी ? इसका अनुमान करना चाहिए तुम्हें। मैं कहता हूँ एक ही दिन में उनकी सारी प्रतिष्ठा धूल में मिल जायगी। पुरोहिताई में अपने यहाँ कोई न बुलावेगा फिर उन्हें। इसलिए समझ से काम लो, नादानी मत करो और लौट जाओ।"—जैकिशन ने बड़ी गम्भीरता से कहा।

"तब मैं इस बच्चे को यहीं छोड़ जाती हूँ। तुम्हारी कठोरता पर रो-रोकर यह यहीं प्राण देगा।"

"जब तुम्हें इसकी मृत्यु इष्ट है तो क्यों नहीं तुम इसे देवीरौ के जल को समर्पित कर देतीं। यह यहाँ पर मर गया तो मुझे पटवारी को तुम्हारा नाम बताना ही पड़ेगा। देवीरौ में पूछने वाला कौन है ?

इसलिए भागा समझ से काम लो, अभी कुछ देर नहीं है जल्दी करो, जल्दी करो। इससे विहीन होकर तुम्हें अपने पिता के यहाँ स्थान मिल जायगा।"—जैकिशन बोला।

जैकिशन के बताए हुए इस हल से भागा के मन में एकदम परिवर्तन हो गया। जिस बच्चे को अभी तक छाती से लगाये हुए वह उसकी प्राण-रक्षा के लिए बेचैन हो रही थी, एकाएक वह उसे पाप के भार-सा जान पड़ा। वह उठी और बिजली की गति से देवीरौ की तरफ भाग चली।

लगभग आधे मील का रास्ता था वहाँ? धनुष से छूटे हुए तीर की तरह चली वह। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सड़क छोड़कर उसने उसके घुमाव काट दिये, गेहूँ के खेतों के बीच से सीधी चली। उसकी आँखों के आगे भी अँधेरा था और उसकी मानसिकता में भी। केवल एक ही विचार उसके मन में प्रबल था—उस शिशु की देवीरौ में जल-समाधि। उसका मन जब उसे उस निश्चय पर से हटाने की कोशिश करता, वह दाँत पीसकर उसे रोक लेती।

अन्धकार! अन्धकार! भीतर-बाहर सर्वत्र अन्धकार! विघ्न-बाधा सबसे साफ़ बचकर चली गई भागा। निश्चय ही उस कलंक के भार को देवीरौ की गहराई को सौंपकर उसकी सारी चिन्ताएँ दूर हो जावेंगी। उसके मैके के लिए भी फिर उसका रास्ता खुल जावेगा, उसकी माँ फिर उसे शरण देने को तैयार हो जावेगी। उस पर समाज और मनुष्यता का नंगा चित्र खुल पड़ा था। एक नये दृष्टिकोण से उसने स्वजन और परिजनों को परख लिया। उसने स्थिर किया कि अब समस्त सांसारिकता से वैराग्य लेकर सारा जीवन प्रभु की याद में बिता कर अपने पापों का प्रायश्चित्त करूँगी।

सामने देवीरौ के विशाल पर्वत के ऊपर आकाश में तारिकाएँ चमक रही थीं। चीड़ के पेड़ों से सनसनाती हवा का स्वर अब निकट आ जाने से ऊँचा हो गया था और निभास नदी की साँय-साँय से

मिलकर एक अजीब रागिनी की सृष्टि कर रहा था।

बच्चा चुप पड़ा सो रहा था और भागा की कठोरता पूर्ण रूप से जाग रही थी। वह प्रत्येक क्षण में एक-एक युग का अनुभव कर रही थी। कब वह कलंक उससे छूट जाय और वह चिन्ताओं से मुक्त हो, इसी एक विचार से वह ओत-प्रोत हो गई थी।

वह देवीरौ के निकट आ पहुँची। विभास नदी धीरे-धीरे पूर्व-वाहिनी हो गई थी। देवीरो की गहराई के लिए नदी पार नहीं करनी पड़ती थी। सड़क भी वहाँ पर पास ही आ गई थी। नदी के दाहनी तरफ एक विशाल शिलाखण्ड था। उसकी जड़ में से एक बाँज का विशाल वृक्ष आकाश में अपनी भुजाएँ उठाए हुए था। उसमें इन्द्रायण की एक प्रच्छन्न बेल लटक रही थी। उस शिलाखण्ड में चढ़कर भागा ने सोचा वहाँ पर से वह बड़ी सफलतापूर्वक न्यस्त-भार हो सकेगी।

उस शिलाखण्ड में चढ़ने से पहले उसने जिस कंबल में बच्चा लिपटा हुआ था उसमें कुछ पत्थर बाँधकर उसे भारी कर लेने की ठानी। ऊपर शायद पत्थर न मिलें इसलिए उसने वहीं पर बच्चे को भूमि पर रखा और एक पत्थर उठाने को दौड़ी। उसी समय दूर पर एक गीदड़ रोने लगा।

उस निशा के भयाबक वातावरण में उस गीदड़ के रुदन ने बड़ी करुण प्रतिध्वनि जगा दी और भागा के हृदय की सोती हुई ममता जाग उठी। उसका हाथ पत्थर उठाने को बढ़ रहा था, रुक गया। इसी समय उसने सड़क पर से उसकी ओर आता हुआ एक प्रकाश देखा।

उसके विचार-क्रम में इतने ही से महान् क्रान्ति मच गई। मन-ही मन वह बोल उठी—"धिक्कार है! मेरे इस मातृत्व को सौ बार धिक्कार! मेरे इस जीवन-लालसा पर थू है। मैंने देख लिया—यह जीवन और संसार दोनों नहीं, मैं एक अशुद्ध उदाहरण बनकर एक क्षण के लिए भी जीवित रहना नहीं चाहती।"

उसने पत्थर उठाने से हाथ खींच लिया। उसने बालक को उठाकर उसके मुख का चुंबन किया—"तुम जियो लाल, तुम निष्पाप हो—देवता तुम्हारी रक्षा करें।"

बच्चा अब भी सो ही रहा था। रोशनी उसी की ओर आ रही थी। वह कोई प्रेत-बाधा न थी। भागा कहने लगी—"मनुष्य का निश्चय कुछ भी नहीं है, भगवान् को तुम्हें बचाना इष्ट है; इसी से उसने यह अदृश्य सहायता भेज दी।"

उसने फिर बच्चे का मुख चूम-चूमकर उसे जगा दिया कि उसके रोने की आवाज़ उस आने वाले का ध्यान खींच ले। वह फिर कहने लगी—"इस डायन माता को भूल जाना।"—बच्चा रोने लगा।

भागा दौड़कर उस शिलाखंड पर चढ़ गई और देवीरौ की गहराई में कूद पड़ी!

वह आने वाला तल्ले देवद का निवासी पानसिंह नामक एक किसान था। दैव संयोग की बात है, उसी रात को उसकी गृहिणी ने एक पुत्र प्रसव किया था, जो कुछ ही देर बाद मर गया। पानसिंह उसी के शव को एक कपड़े में लपेट भूमि में दबाने को जा रहा था।

भागा के पानी में कूद जाने के बाद वह वहाँ से गुज़रा। बच्चे के रुदन ने उसका ध्यान खींच लिया। भगवान् का यह विचित्र संयोग उसके कुछ समझ में नहीं आया। उसने इधर-उधर देखा, कहीं कोई नहीं दिखाई दिया। पहले उसने उसे भूत-लीला समझी। डर-डरकर जब उसने लालटेन से बालक को देखा तो उसका भय जाता रहा।

पानसिंह ने जल्दी-जल्दी एक स्थान पर भूमि खोदकर भागा के बच्चे के कंबल में अपने शिशु का शव लपेटकर गाड़ दिया और अपने बच्चे के कपड़े में उस जीवित शिशु को सावधानी से छाती से लगाकर भाँति-भाँति की कल्पना करता हुआ अपने घर को लौट गया। पूर्व की दिशा उस समय प्रकाश पहनने लगी थी।

२

देवगिरि जी देवीरौ के निकट तब अपने स्नान का डौल लगा रहे थे। नदी-किनारे एक बड़े पत्थर पर उन्होंने अपना लोटा, धोती, अँगोछा और पंखी रख दी। वे प्रायः देवीरौ के गहरे जल में ही नित्य प्रातः स्नान के लिए आते थे। जल में गले तक डूबकर योग का कोई अभ्यास करते थे। कभी-कभी हेमन्त और शिशिर में भी उनका क्रम टूटता न था।

जाड़ों में हिम-शीत जल के भीतर एक घण्टे तक सूर्योदय से पहले देवगिरि जी अवस्थित रहते थे। देवीरौ की ऊँचाई कुछ कम थी, जाड़ों में वहाँ बर्फ़ गिरता था, पर ठहरता न था। लेकिन चारों ओर हिम से ढके पहाड़ों से जो ठंडी हवा वहाँ आती थी, वह दुर्दांत कटीली होती थी। बलिष्ठ नौजवान विभास के उस जल में उँगली डालते हुए भी घबराते थे। वह अस्सी वर्ष का बूढ़ा देवगिरि घण्टों तक उस तलवार की धार में अपनी शय्या बिछाता है! नास्तिक लोग कहते हैं, बाबा चरस की दम लगाकर शीत पर विजय पा लेता है और आस्तिक उनके योगाभ्यास की शक्ति समझते हैं।

"भज गोविंदम् भज गोविंदम् गोविंदम् भज मूढ़मते,
प्राप्ते सन्निहते मरणे नहिं नहिं रक्षतिडुकृन्न करणे!"

—भैरव के स्वरों में गाते हुए देवगिरि जी विभास के झरते हुए जल के मन्द्र निनाद को एक अद्भुत सामंजस्य से भर देते थे। आज भी वे गा रहे थे—

"बालस्तावत क्रीड़ारक्तः, तरुणस्तावत तरुणी रक्तः
वृद्धस्तावत चिन्तामग्नः परे ब्रह्मणी कोपि न लग्नः"

परन्तु देवगिरि जी ने बूढ़े होने से पहले ही सुकाल में काल को पहचान लिया था वे विचार मग्न थे चिन्ता-मग्न नहीं कभी इस

पंजरिका को गाते-गाते वे गद्‌गद् हो जाते थे—

"पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनम्,
इह संसारे खलु दुस्तारे कृपया पारे पाहि मुरारे।
भज गोविंदम् भज गोविंदम् गोविंदम् भज मूढ़मते।"

बाबा जी ने नदी के जल में हाथ डालकर आचमन किया, फिर "अपवित्रः पवित्रो वा" कहते हुए शीर्ष और सर्वांग में पानी के छींटों से ज्योंही उन्होंने मार्जन करना आरम्भ किया, त्योंही ऊपर के शिला-खण्ड से कोई सफ़ेद चीज़ जल में गिरी—"छप्प !"

पैर के ही बल वह गिरी थी। जल अधिक गहरा नहीं था वहाँ पर। भागा थी वह, दोनों हाथ ऊपर कर चिल्ला उठी वह!

भागा के पास जा उसका हाथ पकड़कर तट पर खींच लाने में देवगिरि जी को ज़रा भी देर न लगी।

"कौन हो तुम ?"—बाबा जी ने पूछा, धूमिल प्रकाश में वे उसे अच्छी तरह नहीं पहचान सके थे।

"एक अभागिनी हूँ, जल की गहराई में धक्का दे देते, थल पर क्यों खींच लाये ?"—भागा बोली।

"आत्महत्या का सहायक हो जाता। इस बुढ़ापे में इस घोर पातक से नरकगामी बनता।"—बाबाजी ने उसकी आवाज़ से कुछ-कुछ उसे पहचानकर कहा—"तुम भागा हो क्या ? पंडित ब्रह्मदत्त जी की बेटी मल्ले देवद की ?"

भागा ने लज्जा से सिर नीचा किया। भीगे वस्त्रों में ठंडी हवा के लगने से वह थरथराने लगी।

"मनुष्य का यह दुर्लभ जन्म ! तुम्हें क्यों इससे वैराग्य हुआ ? अच्छे कुल की कन्या हो तुम, ब्रह्मदत्त जी सद्‌गृहस्थ हैं, और कलह के लिए तुम्हारे देवरानी-जिठानी, सास-बहू भी तो कोई नहीं। फिर क्यों यह नासमझी की तुमने ?"—बाबा ने पूछा।

जाड़े से भागा के दाँत कटकटाने लगे। वह रोने लगी—"क्यों

बचा दिया आपने मुझे महात्मा जी ?"

"भगवान् की इच्छा, मैं केवल एक निमित्तमात्र हूँ।"—उन्होंने उसे अपनी धुली हुई धोती देकर कहा—"लो, इसे पहन लो जल्दी से, नहीं तो ठंड लग जायगी। भगवान् को धन्यवाद करो उन्होंने तुम्हारी अकाल-मृत्यु हर ली।

"नहीं।"—कहकर भागा फिर पानी की ओर बढ़ने लगी।

"ख़बरदार! बात को समझो अभी नहीं है तुम्हारे मृत्यु का लेख।"—देवगिरि जी ने बलपूर्वक उसे अपनी धोती पहना दी। उसके ऊपर उसे अपनी नरम पंखी ओढ़ा दी—"चलो, तुम्हें तुम्हारे घर पहुँचा देता हूँ।"

रोते हुए वह बोली—"नहीं, मैं घर नहीं जाऊँगी।"

"क्या किसी ने कुछ कहा-सुना है? मैं सबको समझा-बुझा दूँगा, तुम नारी हो, फिर विधवा नवीन वयस की। पति के घर के बाद फिर पिता का घर ही तुम्हारे योग्य स्थान है। चलो, लड़ाई-झगड़ा होता ही रहता है।"

"नहीं, मुझे घर से निकाल दिया गया है।"—भागा बोली।

देवगिरि जी का माथा ठनका। उन्होंने विचार किया, अवश्य ही कोई गम्भीर घटना हो गई है। उन्होंने फिर उससे कुछ और पूछना मुनासिब नहीं समझा। बोले—"अच्छा चलो मेरे आश्रम में।"

"नहीं, वहाँ भी न जाऊँगी। मैं किसी को अपना मुँह दिखाना नहीं चाहती।"—भागा सिसकती हुई बोली। कुछ मानसिक परिताप से कुछ जाड़े के कोप से।

"अच्छा कोई तुम्हारा मुँह नहीं देखने पावेगा।"

"तो आप छोड़िए मुझे, जल के भीतर डूबकर ही वैसा हो सकेगा।"—भागा बोली।

"हूँ! हूँ! नहीं बेटी! जल के सिवा और भी आवरण हैं। मैं उनसे ढक दूँगा तुम्हें। यह बूढ़ा तुमसे झूठ नहीं बोल रहा है। पाप

सबसे होते हैं, शोक की बात पाप का होना नहीं है ! शोक तभी है जब उस पाप का कोई परिहार न किया जाय । जल के गर्भ में तुम जन्म-जन्मों के लिए पातकी बन जाओगी । मेरे साथ चलो, मैं तुम्हारे प्रायश्चित्त के लिए उपाय बताऊँगा ।"—बाबा बोले ।

"सबको ज्ञात हो जायगा ।"

"मैं किसी से कुछ न कहूँगा । यत्नपूर्वक तुम्हें छिपाकर वहाँ रख दूँगा ।"

"मेरी उपस्थिति से आपका मन्दिर अपवित्र हो जायगा !"

दीर्घ श्वास लेकर देवगिरि बोले—"नहीं बेटी, देवता अपवित्र को पवित्र करता है; यही तो उसका देवत्व है ।"

भागा ने बाबा के चरणों में अपना सिर रख दिया और अपने आँसुओं से उन्हें धोकर बोली—"यह पापिनी आपकी शरण है, इसका उद्धार कीजिए ।"

"पाप से निवृत्त होकर पुण्य प्रवृत्ति रखने वाली तुम गंगा-सी पवित्र और हिमालय-सी उज्ज्वल हो, तुम देवी हो । तुम्हारे पापों का इसी क्षण क्षार हो गया । देवी ! जय हो तेरी !"—देवगिरि ने उसे उठा दिया—"मैं जल में एक डुबकी लगाकर अभी तुम्हारे साथ चलता हूँ ।"

देवगिरि ने एक डुबकी लगाई । भीगी धोती से शरीर पोंछ लिया और उसी से युक्त हो लोटे में जल भरकर मन्दिर की ओर चले—"चलो, जल्दी पैर बढ़ाओ । अभी अच्छी तरह उजाला तो नहीं है, फिर भी कोई-न-कोई मिल गया तो फिर तुम्हें छिपाकर रखने की मैंने जो प्रतिज्ञा की है उसमें अन्तर पड़ जायगा । इसलिए चलो रास्ता छोड़कर इधर नदी के किनारे से मन्दिर के बगीचे से होते हुए उसके पृष्ठ-भाग से भीतर प्रवेश करें ।"

भागा अपनी उतारी हुई भीगी चोली, लहँगा और पिछौड़ा उठा कर देवगिरि के पीछे-पीछे चली । पहली तीव्रता से पाप उसे सींच रहा

था—इस बार वह पुण्य के आकर्षण में थी । भागा मर गई, उसका नया जन्म हो गया, वह शान्ति को प्राप्त हो ।

देवीरौ के निकट ही था मन्दिर, उसके निकट आ जाने पर जब वे मन्दिर के हाते की दीवाल का अतिक्रमण कर रहे थे, देवगिरि ने उसका हाथ पकड़कर सहारा देना चाहा, पर भागा पीछे को हट गई—"नहीं गुरुदेव, मैं अपना पाप न छिपाऊँगी । मैंने अपने पाप-स्पर्श से आपको अपवित्र किया है । मैं नवप्रसूता हूँ । मुझे अब न छुएँ आप ।"

"कोई चिन्ता नहीं, मैं पंचगव्य से स्नान कर लूँगा । एक बार उपवास कर शरीर शुद्ध कर लूँगा । गायत्री के जप से मन की पवित्रता साध लूँगा ।"—देवगिरि अब भले प्रकार समझ गये उसकी निष्कान्ति का कारण, लेकिन इस विषय में उन्होंने और कुछ जानने की कोशिश नहीं की ।

"मैं स्वयम् ऊपर चढ़ जाऊगी, हट जाइए आप ।"—भागा अपने आप ऊपर चली गई—"मन्दिर में न ले जाइए मुझे ।"

"इसी गौशाला में अभी तुम्हारे रहने का प्रबन्ध करता हूँ । एक कमरा बिलकुल खाली है । वहाँ कोई नहीं आता । भगवान् की यह भी एक कृपा हुई किसी ने हमें देखा नहीं ।"—देवगिरि ने कहा ।

भागा मानो एक नये जीवन और नये जन्म में प्रविष्ट हुई । देवगिरि उसे गौशाला के भीतर ले गये । एक कोने में पुआल और लकड़ी का संग्रह था वहाँ । उन्होंने तुरन्त ही पुआल एक तरफ़ बिछा दी । बाहर से ताला बन्द करके अपने घर गये और भागा के लिए वस्त्र और कंबल लेकर जल्दी ही चले आए । दो कंबल उसे पुआल के ऊपर बिछाने को दिए, दो ओढ़ने को । पहनने को धोती और ऊनी बनियान दिए । रात का कुछ बासी दूध रक्खा था, वह दिया उसे पीने को । एक सिगड़ी में आग जलाकर रख दी । सूर्य प्राची में उदय हो गये थे, पर बाबा जी का भागा को असूर्यंपश्या बना देने का विचार था । इसीलिए आग जलानी पड़ी । फिर कमरे में ताला लगाकर

देवगिरि जी चले गये।

जाकर उन्होंने ताजा दूध दुहा। फिर कुछ दूध गरम कर भागा को पिलाने के लिए ले गये। भागा बोली—"आप मेरे लिए बड़ा परिश्रम कर रहे हैं।"

एक क्षीण मुस्कान के साथ बाबा ने कहा—"नहीं तो। तुम्हारा स्वास्थ्य तो ठीक है न ?"

"हाँ, ठीक है।"—भागा ने जवाब दिया।

"बड़ा श्रम…"—देवगिरि जी कुछ कहना चाहते थे पर कुछ नहीं कह सके, बीच ही में बात बदल दी—"यह गाय का ताजा दूध है, इसे पी लो। इससे तुम्हारी श्रान्ति मिटेगी और बल प्राप्त होगा। और फिर मैं अभी-अभी तुम्हारे भोजन का उद्योग करता हूँ।"

"नहीं, नहीं, आप मेरे लिए कोई कष्ट न करें।"

"कष्ट की कोई बात नहीं है। विगत पचीस वर्षों से मुझे चक्की-चूल्हे, तवे-तसले का खूब अभ्यास हो गया। अपने और अतिथि-अभ्यागत सभी के लिए मैं भोजन बनाता हूँ। उसे भार नहीं समझता पर उसमें जीने का एक सुख समझता हूँ। तुम भी तो मेरी अतिथि हो। बहुत अच्छा घर का बना हुआ गाय का घी रक्खा है मेरे पास. पंजीरी बना लाऊँगा तुम्हारे लिए।"—बाबा जी ने कहा।

भागा को अपने बच्चे की याद आ गई। उसका गला रुँध गया और दोनों आँखें अश्रुजल से डब-डबा उठीं। जब वे आँसू नहीं सँभल सके तो भागा ने अपना मुख फिरा लिया। रुद्धकण्ठ से अश्रुसिक्त स्वरों में निकल ही पड़ा उसके मुख से—"गुरुदेव ! मेरा बच्चा ! मेरे इस जीवित रहने की कामना को धिक्कार है !"

उसकी मानसिक वेदना खुल पड़ी। देवगिरि लौट रहे थे, रुक गये। उन्होंने पूछा—"बेटी, कहाँ है तुम्हारा बच्चा ?"

अब उसको बाबा जी की ओर मुँह करना ही पड़ा। आँसुओं का बाँध टूट पड़ा, अविराम धारा बहाती हुई वह बोली—"मैं सिर से पैर

तक पाप की पुँज हूँ, किन्तु मेरा बच्चा—उस पर पाप की कोई रेखा नहीं पड़ी है।"

"बताओ तो सही कहाँ है वह ?"

"उसे ला दीजिए गुरुदेव—ला देंगे आप ?"—बड़े स्नेह-आग्रह से भागा ने कहा—"देवीरौ के ऊपर के शिलाखण्ड, जहाँ से मैं कूदी थी, उसके पास मैं उस बालक को रख आई थी कंबल में लिपटा हुआ है। क्या वह आपको मिल सकेगा ? ओह, बड़ी देर हो गई ! क्यों नहीं अभी तक मुझे उसकी याद आ सकी ?"

"तुम्हें वहीं कह देना था मुझे। देखो जाता हूँ।"—कहकर गुरुदेव दौड़ गये उस तरफ़, वे भागा के द्वार पर बाहर ताला लगाना भी भूल गये।

भागा ने द्वार बन्द कर साँकल चढ़ा दी और हाथ जोड़कर बोली—"हे भगवान्, तुम्हारी अद्‌भुत माया है। मुझे दे दो मेरा बालक। जब वह व्यक्ति उस राह से गया हो, तब वह बालक चुप हो गया हो। तुम्हारे लिए असम्भव क्या है नाथ !"

सड़क छोड़कर देवगिरि जी मन्दिर के पिछवाड़े की दीवाल फाँद-कर भागे। इसके दो कारण थे, एक कारण था लोगों की दृष्टि बचाना, दूसरा देश और काल को संक्षिप्त करना। नदी के पत्थरों पर कूदते-फाँदते हुए चले गये वे क्रीड़ा-चंचल बालक की भाँति ! देवीरौ पर पहुँचते उन्हें कुछ देर नहीं लगी। अब ऊपर के शिलाखण्ड पर चढ़ना एक समस्या हो गई। गिरना बहुत सरल होता है, चढ़ना बुद्धि और शरीर के दोनों बल माँगता है।

एक तरफ़ सेवती की कँटीली झाड़ी और उससे लगी हुई बहुत दूर तक नागफणी की दुर्लंघ्य बाड़। बीच में झरती हुई नदी की अनेक धाराएँ ! कभी उस राह ऊपर गये नहीं थे, समझा था, शायद कोई मार्ग निकल आवेगा। नदी के उस पार से गाय और बकरियों के आने-जाने से एक बटिया दिखाई दी उन्हें वे फिर पीछे को लौटे विमास मे

जाड़ों की वर्षा से अधिक जल तो था नहीं। उसके निकटतम चौड़े पाट में उन्होंने घुटनों तक के पानी को पार किया और ऊपर पहुँच गये। शिलाखण्ड के पास चारों ओर घूमकर देखा, कहीं कोई चिह्न नहीं मिला।

देवगिरि जी जो भी काम हाथ में लेते थे, उसमें सफलता प्राप्त करते थे। उन्होंने सोचा था भागा के बच्चे को ले जाकर उसे सुखी कर सकूँगा। उसके पास जाकर बालक नहीं मिला यह कैसे कहा जायगा ? इस बात को सोचकर वे खिन्न होने लगे। उन्होंने एक बार फिर नये-नये दृष्टिकोणों से बालक की खोज की। कोई चिह्न भी नहीं दिखाई दिया। कुछ समझ में आया नहीं उनके, बालक कहाँ गया ? इतनी सुबह अभी चरवाहों या घसियारों के आने की संभावना थी नहीं। वे सोचने लगे, किसी वन्य-पशु के हाथ लग गया होता तो कंबल तो पड़ा होता कहीं।

टूटे हुए दिल को लेकर लौट गये देवगिरि जी। कभी कोई आकांक्षा नहीं रखते थे वे, इस कारण कभी ऐसी निराशा भी प्राप्त नहीं होती थी उन्हें। जिस पथ से आए थे, उसी से लौट चले।

देवीरौ से दस-बीस क़दम आगे बढ़े थे कि नदी में धनसिंह कुल्ला करता हुआ दिखाई दिया उन्हें। उसकी दृष्टि बचाकर जाना चाहते थे वे, पर धनसिंह ने उन्हें पहले ही देख लिया था। लोटे में जल भर उनके पीछे लपककर हाथ जोड़ते हुए बोला—"बाबा जी महाराज, आज क्या बात है यह ?"

अपनी श्वेत दाढ़ी और लटकती हुई जटाओं पर हाथ फेरकर देवगिरि जी ने कहा—"कैसी बात ?"

"सूर्य भगवान् सिर पर आ गये और आपके माथे पर न चन्दन, और न शरीर पर भस्म-धारण ? आपके कामों को देखकर हम घड़ी-घंटा का बोध करते हैं। क्या बात हो गई ? क्या गाय खो गई कहीं ?"

"नहीं धनसिंह, गाय नहीं खोई।"—देवगिरि ने उत्तर दिया।

मन्दिर के निकट सड़क के उस पार धनसिंह की दूकान है। आटा-चावल, नमक-मसाला, घी-तेल, साग-सब्ज़ी, पान-सिगरेट, चाय-

बिस्कुट-मिठाई—सभी कुछ रखता है। इन सबके ऊपर गाँव का पोस्ट-मास्टर भी है वह। दूकान की एक दर में एक स्टैण्ड वाला तराजू, एक मेज़ और उस पर एक अलमारी, एक छोटा-सा लैटरबॉक्स, डाकखाने के विविध फॉर्म, टिकट-लिफाफे-कार्ड, और उनको बदरंग करने वाली मुहरें सँभालकर बाबू धनसिंह पोस्टमास्टर भी हैं। हिन्दी मिडिल पास हैं, अंग्रेजी के पते भी लिख-पढ़ लेते हैं।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की उस सड़क पर हल्द्वानी से व्यापार करनेवाले घोड़ेवाले भी चलते हैं और तीर्थयात्री भी। इसके सिवा पास के ग्रामों में भी उसके गाहक हैं और मन्दिर में आने-जाने वाले भी उसकी दूकान में उठते-बैठते हैं। दूकान के दो कमरे खाली भी रख छोड़े हैं धनसिंह ने। उसमें यात्रियों के ठहरने का सुभीता है। कोई किराया नहीं लेता वह, लेकिन यात्री उसके यहाँ से सौदा खरीदते हैं, उसी में कुछ समझ लेता है धनसिंह। एक घासलेट के टीनों से छाया हुआ छप्पर भी उसने बना रक्खा है। उसमें घोड़ेवाले व्यापारियों के घोड़े विश्राम करते हैं, रात को। उसका भी कुछ किराया नहीं लिया जाता लेकिन घास और लकड़ी की बिक्री में धनसिंह सब कुछ वसूल कर लेता है।

धनसिंह की दूकान को पास-पड़ौस के कई गाँवों का एक क्लब, पंचायत या समाचार-पत्र समझिए। देश की राजनीति, गाँव की सामाजिकता, मौसम के हाल-चाल, फैशन का कुयोग, धर्म की हानि सबके वाद-विवाद वहाँ पर आकर जमा होते और चारों ओर को फैलते हैं।

असमय ही देवगिरि जी का उस मार्ग से मन्दिर को जाना धनसिंह के लिए एक विचित्र बात थी, वह अपनी बुद्धि से उसे हल नहीं कर सका। उसने फिर पूछा—"गाय नहीं खोई, तब जरूर आप जंगल में कोई जड़ी-बूटी खोजने गये होंगे। कौन बीमार है? मन्दिर में तो आज-कल कोई अतिथि-अभ्यागत है नहीं। गाँव से कोई बीमार आया है क्या?"

अपने ही विचारों में तल्लीन देवगिरि जी आगे-आगे जा रहे थे।

कोई उत्तर नहीं दिया उन्होंने धनसिंह के प्रश्न का और तेज़ी से बढ़ते ही रहे। इस पर धनसिंह जोर से बोला—"बाबा जी, नहीं सुना आपने! पनुवे का छोटा बच्चा—"

बच्चे के नाम से कुछ आकर्षित हुए बाबा जी। उन्होंने धनसिंह की ओर मुँह फिराकर पूछा—"कौन पनुवा?"

"हमारे गाँव का पानसिंह। कल रात उसके लड़का हुआ, थोड़ी देर बाद मर गया। पनुवाँ उसे मिट्टी देने लाया था। रास्ते में भगवान् की क्या विचित्र माया हुई, कौन जाने? संजीवनी बूटा छू गई उसे? बच्चा जी उठा और वह परमेश्वर की जय पुकारता हुआ घर लौट गया। मैं तो कहता हूँ जरूर संजीवनी बूटी है इस पहाड़ में। द्रोणगिरि पर्वत यहाँ से बहुत दूर नहीं है। एक ही पेड़ थोड़े होगा उसका जो महावीर जी उठा ले गये।"—धनसिंह ने कहा।

देवगिरि ने पूछा—"किसने कहा तुमसे?"

धनसिंह बोला—"आपकी कृपा से महात्मा जी मैं पोस्टमास्टर हूँ, देस-परदेस क्या, लड़ाई के दिनों में मेरे पास विलायत की भी डाक आती थी। यह तो यहीं पर आधा मील दूर मेरे गाँव तल्ले देवद की बात है। अभी उसने एक आदमी भेजा था मेरे पास कस्तूरी की खोज में। मैं नोन-तेल बेचने वाला मेरे पास कस्तूरी कहाँ? आपके पास भेजा था मैंने। नहीं आया?"

"नहीं, मेरे पास कोई नहीं आया।"—कहकर बाबा जी मन्दिर की ओर चले गये और धनसिंह ने अपनी दूकान का रास्ता लिया।

देवगिरि ने गौशाला में जाकर उसका बंद द्वार धीरे-धीरे खटखटाया इधर-उधर देखकर।

भागा ने द्वार खोल दिया और देवगिरि जी को खाली हाथ लौटा हुआ देखकर रोने लगी—"नहीं मिला?"

"नहीं भागा, जान पड़ता है कोई उठा ले गया उसे।"

"कोई जंगली जानवर, गीदड़ या बाघ? अपनी जान बचाकर मैं
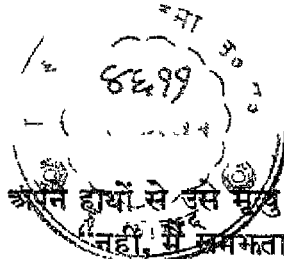
अपने हाथों से उसे मृत्यु को सौंप आई !"—भागा रोने लगी !

"नहीं, मैं समझता हूँ वह सुरक्षित है कहीं।"

"कहाँ है ?"—आशान्वित होकर उसने पूछा।

"कहीं अवश्य होगा। यह निश्चय है जंगली जानवर नहीं ले गया उसे।"—बाबा जी ने जवाब दिया।

भागा ने हाथ जोड़कर कहा—"भगवान् उसकी रक्षा करें।"

देवगिरि भागा को धीरज बँधाकर चले गये उसके भोजन की व्यवस्था करने। आज उनकी संध्या-पूजा सब विलंबित हो गई थी।

४

उस बालक को छाती से लगाए, पानसिंह हर्ष में भरा 'भगवान् की जय पुकारता हुआ अपने गाँव को लौटा। रास्ते में सबसे पहले उसे सिरीराम मिला।

सिरीराम गाँव के बिसुवा ढोली का लड़का है। उसका पिता गाँव के उत्सवों पर ढोल बजाता है, पर नित्य ही तो उत्सव नहीं होते, इसलिए उसे जीवनधारा को भूमि-पतियों के खेतों पर मजूरी करनी पड़ती है। कपड़े भी सीता है वह, पर एक तो उसके पास सीने की मशीन नहीं दूसरा नई काट-छाँट से वह सर्वथा अपरिचित है। गाँव के कुछ साधारण हैसियत और पुरानी परिपाटी के किसानों के अँगरखे, पायजामे, घाघरे, चोलियाँ आदि कपड़े उसे सीने को मिल जाते हैं। उसके बदले में वह कच्चा-पक्का अनाज पाता है।

बिसुवा शिल्पी और कलाकार, भाग्य से वह अछूत के घर पैदा होने वाला, छूत उत्तराधिकार में प्राप्त थी उसे। समाज की उच्च श्रेणी के लोगों की छाया बचाकर चलने का आदी था वह और इसका कोई काँटा भी नहीं था उसके मन में। दूर से ही किसी को आते हुए देखकर वह एक स्वभाव-सिद्ध प्रेरणा से मार्ग के एक ओर अपनी काया और छाया समेटकर हाथ जोड़ कहता—"सेवा मालिए जी।" "जीवित रहो बिसुवा!"—यह आशीर्वाद मिलता था उसे। पर कैसे जीवित रहता था वह, यह केवल वही जानता था।

लेकिन सिरीराम ने सदियों की यह गुलामी तोड़कर फेंक दी। उसने हल्द्वानी आर्यसमाज़ में जाकर अपनी शुद्धि करा ली। स्नान करने लगा, जनेऊ पहन ली और ईमानदारी के व्यवहार से उन्नति करने लगा। पेंठ पड़ाव के पास उसने एक दर्जी की दूकान खोल ली, एक पुरानी मशीन खरीदकर काम शुरू कर दिया। उसका काम पक्का

था और वह वादे को सच्चाई से निभाने लगा। कुछ ही दिन में उसकी दूकान चल पड़ी और वह सिरीराम मास्टर के नाम से मशहूर हो गया। अब बाजार में उसकी दूकान है, कई नई मशीनें हैं हाथ और पैरों से चलने वाली, दो-तीन कारीगर उसके यहाँ काम करते हैं।

अभी पिछले दिनों वह घर आया था। आज हल्द्वानी को जा रहा है। गाँव के द्विज लोगों से अब सिरीराम "सेवा मानिए जी" नहीं कहता, कहीं पर जरूरत पड़ गई तो नमस्ते से काम लेता है। इससे कई लोग उसकी उन्नति पर कोई उत्साह नहीं दिखाते।

पानसिंह भी शायद उससे बिना बोले ही चला जाता। लेकिन आज उसे दूर से ही देखकर कहने लगा—"नमस्ते सिरीराम मास्टर !"

"नमस्ते !"—कहकर सिरीराम अपने रास्ते में जल्दी-जल्दी जाता ही रहा। उसे शाम तक हल्द्वानी पहुँचना था।

"ठहरो तो सही, देखो, मेरा यह बच्चा मर गया था, फिर जी उठा !"

"ऐसा भी कहीं होता है, यह मरा ही न होगा, बेहोश हो गया होगा।"—सिरीराम उसकी ओर बिना देखे ही चल दिया।

पानसिंह को भी बड़ी जल्दी थी, वह सिरीराम की शंका का निराकरण किये बिना ही घर की ओर लपका। फिर उसे कुछ घोड़े-वाले मिले। उनसे भी उसने कहा—"ईश्वर की अजीब माया है, मेरा बच्चा चल बसा था, फिर जिन्दा हो गया।" वह बच्चे का मुँह खोल-कर दिखाने लगा।

एक घोड़ेवाले ने कहा—"भगवान् की महिमा सब कुछ कर सकती है।"

दूसरा बोला—"मुँह मत खोलो, ठंडी हवा लग जायगी।"

और भी जो उसे सड़क पर मिले पानसिंह सबसे अपनी कहानी कहता हुआ गाँव की बटिया में आया। प्रधान जी की वृद्धा माता नहाने के लिए जा रही थीं। उन्होंने अभी-अभी सुना था उसका लड़का

मर गया। वे यही समझीं कि वह मरे हुए लड़के को ले जा रहा है। एक ओर को हट गईं, उसकी छूत से बचने के लिए।

"पाएँ लागन माता जी, आप क्यों उधर भाग रही हैं? मेरा बच्चा जी उठा!"—पानसिंह उनकी ओर बढ़ने लगा।

वे और दूर पर भाग गईं। जैसे कोई प्रेत से डरकर भागता है।

"आप बड़ी-बूढ़ी हैं। जिन्दगी और मौत की क्या कोई हँसी की जाती है। यह देखिए।"—पानसिंह ने बच्चे का मुँह खोलकर वृद्धा को दिखाया।

वृद्धा घबराकर अपने घर को भागी। पानसिंह हँसने लगा।

"मेरा बच्चा जी उठा! मेरा बच्चा जी उठा!"—कहते हुए पानसिंह अपने घर के आँगन में आया।

शोर सुनकर उसके कई पड़ौसी दौड़े आये। वह घर के भीतर घुसा। उसकी शोक-संतप्ता पत्नी को एक-दो स्त्रियाँ ढाढ़स बँधा रही थीं।

पानसिंह ने पत्नी की गोद में उस बालक को रखते हुए कहा—"लो यह तुम्हारा बेटा। भगवान् ने यह लौटा दिया तुम्हें।"

पत्नी को मृत्यु और जीवन के इस सम्मिश्रण पर बच्चे की जान-पहचान का कोई प्रश्न ही न रहा। उसने बच्चे का मुँह चूमा और उसे छाती से लगाया। उसने अवाक् होकर पति की ओर देखा। मानो एक सर्वस्व लुटे हुए को कुबेर का अनन्त भांडार मिल गया!

पानसिंह कहने लगा—"भूल देवता-मनुष्य सभी से होती है। जान पड़ता है यमदूतों ने ग़लत मकान पर चढ़ाई कर दी। जब सच्चाई खुल पड़ी तो हमारा बालक हमें लौटा दिया गया। लो अब जतन से इसका पालन करो!"

तमाम पड़ौसी इस आश्चर्यजनक घटना से दंग रह गये। एक बोला—"पण्डित जी को बुलाकर शान्ति-पाठ कराना उचित है। मौत की परछाईं पड़ी है, इस घर में।"

दूसरा कहने लगा—"यह बालक यम के दूतों को हराकर आया है, यह बड़ा भाग्यशाली होगा।"

पानसिंह मन में सोचने लगा—"अगर ऐसा हो गया तो बिसुवा ढोली के सिरीराम की तरह यह भी मेरे घर में उजाला कर देगा और हल की फाली ठोकते-ठोकते और बैलों की पूँछ मरोड़ते-मरोड़ते मेरी जान भी छूट जायगी।"

पड़ौसी बोले—"पनुवाँ, अब गुड़ की भेली फोड़ो और सबका मुँह मीठा करो।"

पानसिंह ने जवाब दिया—"अरे ! गुड़ की भेली क्या सत्यनारायण जी की कथा कराऊँगा। तुम सबको हलवा-पूरी खिलाऊँगा।"

जच्चा के हर्ष का ठिकाना न रहा। इतनी बड़ी आयु होने को आई, देवी-देवताओं की मनौती मानते-मानते वह हार गई थी, तब कहीं जाकर उसे एक पुत्र प्राप्त हुआ। वह पुत्र जन्मते ही चल बसा, यह उसके लिए असह्य परिताप का विषय हो गया था। वह फिर लौटकर आ गया—इससे अधिक और कौन खुशी उसके लिए होती ?"

बच्चे की मृत्यु के अनन्तर जच्चा सौरि-गृह को गोबर से लीप प्रथम् स्नान कर शुद्ध हो गई थी। बच्चे के लौट आने पर फिर उसकी शय्या उसी कोने में भूमि पर बिछाई गई। गोबर से चारों ओर बाड़ कर वह फिर सौरि-गृह में आसीन हुई। घर में फिर चहल-पहल मच गई। लेकिन इधर-उधर की भाग-दौड़ से बच्चे को कुछ ठंड लग गई और फेर पानसिंह के मकान पर चिंता की घनी छाया छा गई।

× × ×

देवगिरि जी भागा के लिए पँजीरी बनाकर ले गए। वह फिर उनको छूने में सकुचाने लगी। बाबा जी कहने लगे—"तुम देवीरौ के जल में नहाकर शुद्ध हो चुकी हो—तुम्हारी सारी अपवित्रता चली गई फिर भी तुम्हें कुछ संशय है तो मैंने गौमूत्र और गंगा-जल

छिड़ककर तुम्हें शुद्ध कर दिया है।"

भागा अनन्त कृतज्ञता-भरी दृष्टि से उन्हें देखने लगी। बाबा बोले—"शारीरिक अपवित्रता से मन की अपवित्रता बड़ी है। तुम उससे भी शुद्ध हो चुकी हो।"

आश्चर्य से भागा ने पूछा—"कैसे गुरुदेव ?"

"वह शरीर और वह मन तुम्हारा देवीरौ में जल-समाधि पा गया। यहाँ तुम एक नये जन्म को लेकर आई हो।"

"यह सच है क्या ?"

"हाँ, यह सच है। मुझे ऐसा विश्वास है, तुम्हें भी होना चाहिए।"

"गुरुदेव, लेकिन मेरा वह निष्पाप बच्चा ?"

बाबा जी पनुवाँ के बेटे के पुनर्जीवन की घटना को कुछ रहस्य के साथ देखने लगे थे, पर उन्होंने भागा से उसका कुछ भी उल्लेख नहीं किया। उन्होंने कहा—"भागा! जिस भगवान् ने तुम्हें बचाया है, वही तुम्हारे बच्चे की भी जरूर रक्षा करेगा।"

आशा में भरकर भागा बोली—"कहाँ है वह ?"

"जहाँ भी होगा मैं लाऊँगा। एक दिन तुम पहचान सकोगी उसे ?"

"कब लावेंगे आप ?"

"दस-पाँच दिन में तो नहीं, दो-चार वर्ष में ?"

"तब कैसे पहचान सकूँगी ?"

"माता के ममत्व से।"

"हाँ," कुछ स्मरण कर उसने कहा—"हाँ, अवश्य माता के ममत्व से।"

"तुमने ठीक ही कहा भागा! ममत्व ही तो हमारा नाता है। जब तुम्हारे हृदय में ममत्व है तो क्या फिर सारी सृष्टि के बालक हमारी सन्तान नहीं ?"

"गुरुदेव, मैं नहीं समझी।"

"एक दिन आवेगा भागा, तुम समझोगी तुम्हें किसी चीज़ के

आवश्यकता है तो कहो। फिर मैं पूजा के लिए बैठता हूँ।"

"मेरे कारण आज आपकी पूजा-अर्चना सब मिट्टी में मिल गई! हतभागिनी मैं!"

"नहीं भागा, आज मैंने तो एक देवता और पाया है। मन्दिर में पत्थर के देवता हैं, उनके उत्तर मुझे स्वयम् ही गढ़ने पड़ते थे, तुम सवाक् देवी होकर मुझे मिली हो।"

"गुरुदेव! गुरुदेव! मैं पापिनी हूँ।"

"जूठा बरतन माँजकर फिर साफ हो सकता है न?"

आशा में भरकर भागा बोली—"हाँ गुरुदेव! लेकिन···" वह कुछ और भी कहना चाहती थी पर कह न सकी।

देवगिरि स्वामी ने उसकी पूर्ति की—"हमारी यह देह, ही बरतन है, यह जिस चेतन आत्मा को वहन करता है उसी से तुम्हारा मतलब है क्या?"

"हाँ, उसी से मतलब है।"

"भागा, वह जूठी नहीं होती।"—देवगिरि जी ने मुस्कान के साथ कहा।

"वह क्यों जूठी नहीं होती?"

"यद्यपि वह पवन से भी कहीं सूक्ष्म है, पवन भी अगर हम उसे मान लें तो बरतन के जूठे होने पर पवन भी जूठा हो जाता है क्या?"

"नहीं, पवन जूठा नहीं होता।"—भागा का उदास मुख एक प्रकाश में उज्ज्वल हो उठा, उसने बड़े निश्चय से कहा।

"नहीं, पवन जूठा नहीं होता, आत्मा निर्विकार और निर्लेप है। यह बरतन जूठा हो जाता है लेकिन उसे जूठा करना या रखना जीवन का लक्ष्य नहीं है। प्रमाद, असावधानी, बहका दिए जाने, अज्ञान, काम, क्रोध या लोभ से बतरन जूठा हो जाता है। वह मँजकर साफ हो जाता है। उसको माँजकर स्वच्छ करने की वृत्ति जिसके मन में उदय हो गई वह पवित्र है, कौन उसे अपवित्र कहता है?"

"स्वयम् घर के माता-पिता कहते हैं! माता—नौ महीने जिसने पेट में स्थान दिया, उसने एक क्षण के लिए भी गौशाला में स्थान देने को स्वीकार नहीं किया।"—भागा रोते-रोते बोली।

"समाज के केवल एक झूठे भय की प्रेरणा। तुमने देवता के चरणों में शरणागति पाई है, तो तुम्हें फिर क्यों चिन्ता हो?"

घबराकर भागा बोली—"आप मुझे छिपाकर यहाँ नहीं रक्खेंगे?"

"छिपाकर ही रक्खूँगा, ताले में बन्द कर रक्खूँगा।"—देवगिरि जी ने ताला-चाबी उठाकर कहा—"अब मैं नित्य-कर्म के लिए जाता हूँ। पूजार्थी मन्दिर में आने-जाने लग गये हैं—वे व्यर्थ की शंका में पड़ जावेंगे। तुम विश्राम करो।"

देवगिरी स्वामी भागा को ताले में बन्द कर मन्दिर में गये। देवताओं की जल्दी-जल्दी पूजा-आरती की। ध्यान करने बैठे तो वही भागा दिखाई दी। एक समस्या बनकर वह उनके मानस में छा गई थी। स्वामी जी किसी बात से कुण्ठित नहीं होते थे। अपने प्रत्येक संसर्ग में चाहे कैसा ही हो वह, अच्छा या बुरा, प्रभु को ही उसका नियामक समझते थे।

भागा के प्राण बचाने पड़े उन्हें—इसे कर्त्तव्य-परायणता नहीं समझा उन्होंने, जितना प्रभु की आज्ञा का पालन। भागा छिपकर ही उस मन्दिर में रहना चाहती थी, स्वामी जी की भी यही इच्छा थी। समाज का भी भय था उन्हें और व्यक्तियों का भी। समाज पथ-विचलित व्यक्ति के सुधार की उतनी चिन्ता नहीं करता, जितना उसके अपवाद को फैलाकर और भी उसको गिरा देने में सहायक होता है।

भागा को छिपाकर कितने दिन रक्खा जायगा? अवश्य ही किसी-न-किसी दिन यह भेद खुल जायगा। इस प्रकार झूठ बोलने के लिए देवगिरि जी की अन्तरात्मा गवाही नहीं देती थी। भागा को छिपाकर भी रक्खा जाय और वह प्रकट भी रहे इन दो विरोधी स्थितियों के

बीच में वह कौन सी जगह है? वे उसे ढूँढ़ने लगे।

सोचते-विचारते उन्होंने निश्चय किया—भागा को रक्खा तो छिपा कर ही जायगा, लेकिन लोगों को परिचय दे दूँगा। क्या परिचय हो उसका? निर्णय किया—"कह दूँगा यह एक साधिका हैं, कैलास से आई हैं।" लोग पूछेंगे—"कब आईं?" "कह दूँगा—रात को आईं। रात को ही यात्रा करती हैं। असूर्यपश्या हैं। बारह वर्ष तक सूर्यदर्शन नहीं करेंगी—मौन व्रती हैं, केवल फलाहार करती हैं। जनता का भी मुख नहीं देखतीं।"

इन विचारों के आते ही, देवगिरि जी के हृदय और मस्तिष्क का सारा भार हलका हो गया। उन्होंने अपने इष्टदेव शंकर को हाथ जोड़े, बाएँ हाथ की ओर सूर्य स्थापित थे, फिर गणेश, फिर देवी और फिर विष्णु प्रतिष्ठित थे। देवगिरि जी ने सबको माथा नवाया और इस भारी चिन्ता से मुक्ति पाने के लिए उनकी कृपा मानी।

भोजन तैयार कर उन्होंने देवता को भोग लगाया। वे जब स्वयम् भोजन कर रहे थे तो पानसिंह का भेजा हुआ एक मनुष्य उन्हें पुकारने लगा—"स्वामी जी, पानसिंह का जो बेटा मरकर जी उठा था, वह फिर बीमार हो गया है। लोगों ने कस्तूरी देने को कहा है। आपके पास कोई उसका कण हो तो गरीब का भला हो जाय। मैं पहले भी आया था। सारा गाँव छान आया हूँ, सबने आप ही के पास बताई है।"

"मैं अभी खाना खा रहा हूँ। तुम जाओ, मैं शीघ्र ही स्वयम् उसे लेकर आऊँगा।"—देवगिरि जी भीतर ही से बोले।

वह व्यक्ति उनका जवाब लेकर चला गया। स्वामी जी ने तुरन्त ही भोजन समाप्त कर दिया और हाथ-मुँह धोने लगे।

× × ×

लेकिन भागा की आँखों में नींद कहाँ? उसके मन में चिन्ता का पर्वत समा गया था, जिस कारण उसे अपने शरीर की श्रांति और श्रम पर विचार करने का एक क्षण भी नहीं मिला। वह अपनी भूमि-शय्या

पर पड़ी थी। पर उसकी समस्त चेतना उस बन्द कमरे के एक अधखुले गवाक्ष से होकर अनन्त आकाश की नीलिमा में भटक रही थी। उसकी आत्मा उसके बिछड़े हुए बालक को खोज रही थी।

एक विश्वास उसके मन में जाग उठा। वह अपने आप विचारने लगी, उसका बच्चा सुरक्षित ही है। अवश्य ही उसे वह व्यक्ति ले गया है, जो रात को देवीरौ के पास से जा रहा था। अब वह सोचने लगी, वह व्यक्ति गाँव में उस बालक को ले जाकर घोषित करेगा—"यह बालक मुझे जंगल में पड़ा मिला!" और लोग कहेंगे—"किसी कुल-कलंकिनी का होगा।"

भागा रोते-रोते फिर चुप हो गई। कभी कहती, वह किसी दूसरे गाँव का होगा; फिर सोचती, नहीं दूसरे गाँव का व्यक्ति सड़क छोड़कर इस प्रकार जंगल में नहीं जा सकता।

इसी समय देवगिरि जी ने आकर उसका स्वप्न तोड़ दिया—"भागा, मुझे लगता है जैसे मैं तुम्हारे बालक को ढूँढ़ सकता हूँ। लेकिन ला नहीं सकूँगा तुम्हारे पास।"

प्रसन्न होकर बोली—"हाँ, केवल ढूढ़ ही दीजिए। मैं दूर से ही उसका अनुमान कर सुखी हो जाऊँगी।"

"लेकिन उसकी पहचान बताओ कुछ, तभी तो।"

भागा गहरे विचार में डूबकर उतराई—"पहचान क्या बताऊँ? उसके जन्मते ही मैं ऐसे भारी संकट में पड़ गई कि जी भरकर उसे एक नजर देख भी न सकी।"

"तब कुछ नहीं हो सकता।"

"क्या गाँव में देवीरौ में पड़े हुए बालक को किसी ने पाया है? यही है मेरा बालक यही सबसे बड़ी पहचान है।"

"नहीं, ऐसा तो कोई नहीं कहता। मेरी समझ में यह बात छिपा दी गई है। याद करो, कोई पहचान बताओ।"

निराशा से भागा बोली—"कुछ नहीं बता सकती।"

"अगर मैं कुछ दिन बाद उसे तुम्हारे पास ले आऊँ तो पहचान सकोगी ?"

भागा रो पड़ी—"मैं नहीं कह सकती।"—सहसा एक पहचान जाग उठी उसके, वह बोली—"वह नीली-काली धारियों-युक्त लाल ज़मीन के एक पुराने कंबल में लिपटा हुआ था। उसका एक कोना जल गया था उसे मैंने रफ़ू कर रक्खा था।"

"अच्छी बात है।"—कहकर स्वामी जी उसे पूर्ववत् बन्द कर चले गये। उन्होंने एक कागज़ की पुड़िया में कस्तूरी पहले ही से रखली थी।

मन्दिर के बाहर आँगन में उनकी धूनी थी। कुछ भक्त लोग आकर वहाँ जुट गये थे। उनके पास जाकर एक प्रमुख व्यक्ति से बाबा जी ने कहा—"मैं तल्ले देवद जा रहा हूँ, पानसिंह का लड़का बीमार है, अभी आधे घण्टे में आ जाऊँगा, ज़रा ध्यान रखना।"

एक बोला—"उसका मरा बेटा जी उठा था, क्या फिर बीमार हो गया ?"

× × ×

देवगिरि जी ने जाकर पानसिंह के बेटे को देखा। कस्तूरी नहीं दी उन्होंने बोले—"कफ़ सूख जायगा कस्तूरी से।"—वे दूसरी दवा अपने साथ ले गये थे, उसका क्वाथ बनाकर देने को कहा।

चारों ओर घर के प्रत्येक कोने में स्वामी जी की तीव्र दृष्टि उस लाल ज़मीन के कंबल को ढूँढ़ रही थी, लेकिन वैसा कोई कंबल नहीं दिखाई दिया उन्हें। एक मट-मैली पंखी थी और एक निपट काला भोटिया थुलमा। दो कमरे थे पानसिंह के गोठ के, बाबा जी ने दोनों कमरों को अच्छी तरह जाँच लिया।

जाते हुए उन्होंने पानसिंह से कहा, "पानसिंह, कोई चिन्ता की बात नहीं है। बच्चे को ठण्ड लग गई है, दो-चार दिन में ठीक हो जायगा। सर्दी से रक्षा करना।"

हाथ जोड़कर पानसिंह बोला—"हाँ महाराज, जब मौत के घाट से लौटाकर भगवान् ने यह मुझे दे दिया है तो यह ठण्ड कोई चीज़ नहीं। आपका आशीर्वाद पा लिया, दवा मिल गई अब ज़रूर ठीक हो जायगा। यह लोगों की नज़र भी लग गई है इसे, ज़रा भभूत भी लगा दीजिए।"

बाबा जी ने तीखी नज़र से उसे देखकर पूछा, "पानसिंह, यह तुम्हारा बच्चा जी कैसे उठा?"—कुछ राख अभिमंत्रित कर उन्होंने पानसिंह को दे दी।

उनकी पग-धूलि लेकर पानसिंह बोला—"महाराज, आप हमारे लिए बोलते भगवान् हैं, हम मौत और जीने का भेद नहीं समझते यह सब आप जानें। लेकिन देवीरौ के पास वाले सम्भसान में जब मैं लालटेन लेकर अपने मरे हुए बच्चे को ले जा रहा था तो यह ठीक देवीरौ के पास रो उठा। परमेश्वर को हाथ जोड़ मैं घर लौट आया। यह आज ही सुबह की बात है।"

बाबा जी लौट गये।

५

माता धड़कते हुए हृदय को लेकर वैसी ही बैठी रह गई अरुणोदय तक उसके कान निरन्तर बाहर की ध्वनियों पर लगे हुए थे। आशंकाओं पर आशंकाओं की लहरें उसके मानस में बनती और टूटती चली जा रही थीं। ऊँचे पर्वतों की चोटियाँ सुनहरी धूप से रंग गईं। अभी तक उसका ऐसा विश्वास था कि भागा उस शिशु को कहीं फेंककर चली आवेगी। बहुत देर हो गई थी, वह समय निकल चुका था। घबराकर उठ गई वह।

सोचने लगी वह, कलंक को छिपाने का सबसे श्रेष्ठ उपाय यही था। इसका अनुसरण नहीं किया उसने, अब निश्चय ही सारी विभास की घाटी में हमारी बदनामी फैल जायगी। दो-चार दिन बाद तो यह बात खुल ही जावेगी; क्यों न अभी उसका सामना करूँ?

उसने धीरे-धीरे पति को पुकारा। वे भीतर बच्चों के साथ पड़े थे। एक दस वर्ष का था, दूसरा और भी अबोध पाँच वर्ष का, दोनों इस समय नींद में थे।

ब्रह्मदत्त जी ने पड़े-ही-पड़े पूछा—"क्या कहती हो?"

"मैं स्नान करने जा रही हूँ, शिव-मन्दिर में।"

वे उठकर बाहर के कमरे में आ गये, बोले, "यहीं नदी में नहा लो न?"

"नहीं, जाकर देखती हूँ उसने क्या किया, वह कहाँ गई?"

"घर से निकाल दिया और अब उसे ढूँढ़ने जा रही हो? किस लिए?—चुपचाप बैठी रहो घर में। मैं जानता हूँ कहाँ गई वह? दैव का दारुण अभिशाप। भूल करने वाले को जब क्षमा नहीं मिले, उसकी स्थिति और कठिनाई का विचार न हो तो कोई और क्या करे?"—पण्डित जी बोले।

"कहाँ गई वह, बताते क्यों नहीं ?"—गृहिणी ने पूछा।

"वह निश्चय देवीरो के जल में कूद पड़ी है। माता की शरण में स्थान न पाने पर और क्या होगा ? मैं उस लड़की के आत्माभिमान को जानता हूँ।"

गृहिणी रोने लगी—"मेरी बेटी, मेरी आभा ! मैं बचाऊँगी उसे।"—वह लोटा और धोती उठाकर जाने लगी।

पण्डित ब्रह्मदत्त जी उसका हाथ पकड़कर रोकना चाहते थे, लेकिन उसने कहा—"हैं, हैं, मुझे उसकी छूत लगी है। मैं नहाने जा रही हूँ। मेरा स्पर्श कर अपनी जनेऊ अपवित्र न करो।"

पण्डित जी निरुपाय होकर बोले—"मैं भी चलता हूँ।"

"नहीं तुम यहीं रहो। बच्चे उठकर फिर हो-हल्ला मचाना आरम्भ कर देंगे।"—पत्नी ने विरोध किया।

लोगों की नज़र बचाती हुई चली वह। एक-एक पग चिन्ताओं से भरा भारी प्रतीत हो रहा था। बिरादरी के मकान एक तरफ़ को थे। उसके मार्ग में कुछ ठाकुरों के घर पड़ते थे। एक गौशाला में एक स्त्री गोबर साफ़ कर रही थी। पण्डितानी जी को आता देखकर वह उनके पैर छूने को बढ़ी।

पण्डितानी जी पीछे को हटकर बोलीं—"मन्दिर में जा रही हूँ, मुझे छूना मत।"

निष्प्रभ होकर वह स्त्री कहने लगी—"बरत होगा आज ?"

"हाँ, बहुत दिनों से दर्शन नहीं किए हैं।"—पण्डितानी जी बात को वहीं समाप्त कर आगे बढ़ गईं ! लेकिन उनके मन में एक भरोसा-सा जाग रहा था जैसे उसकी बात कहीं खुली नहीं है।

और भी दो-चार स्त्री-पुरुष उसे मिले। किसी की बातचीत या मुख के भावों से उसकी आशंका नहीं बढ़ी, फिर भी सड़क की राह जाने को उसके मन में साहस नहीं हुआ। उन्होंने सड़क छोड़ दी और बिआस नदी के किनारे-किनारे चलने लगी।

शेरुवा लाटा, गाँव का एक चरवाहा गायों को चराने के लिए जंगल को ले जा रहा था, परिडतानी जी को देखकर बोल उठा—"पा-पा-पानसिंह को गे-गे-गे एक ब-ब-ब-बच्चा मिला।"

परिडतानी जी के ऊपर मानों संकट का पहाड़ टूट गया। उन्होंने हिम्मत कर पूछा—"जीवित या मरा ?"

"जि-जि-जिन्दा ! हो ग-ग-गया !"—लाटा बोला !

"कहाँ मिला ?"—फिर हिम्मत कर प्रश्न किया उन्होंने।

"दे-दे-देवीरौ में।"—शेरुवा बोला।

हकला शेरुवा, उच्चारण ही उसका दोषपूर्ण न था। समझ भी वैसी ही थी। गाँव में जिस तरह वह सत्य प्रसारित हो रहा था, उसके दिमाग़ में उसी तरह नहीं घुसा था। फिर उसी तरह ठीक-ठीक व्यक्त ही कैसे होता उससे ?

जो कुछ भी हो, परिडतानी जी थर-थर काँपने लगीं। बच्चे से इस प्रकार मुक्ति पाकर ज़रूर भागा घर लौट गई होगी। बिना मन्दिर तक गये उनका मन वापस आने को भी न माना। वे तेज़ी से आगे को बढ़ीं।

देवीरौ पहुँचकर इधर-उधर देखा, भागा का कोई पता-निशान देखने में नहीं आया। मन्दिर के घाट में जाकर उन्होंने स्नान किया और शुद्ध होकर मन्दिर में गईं।

मन्दिर में देवगिरि जी नहीं थे। कुछ पुजार्थी परिक्रमा कर रहे थे और कुछ लोग धूनी के चारों ओर बैठे चिलम पी रहे थे और बातें हो रही थीं। आधे घूँघट में नीची दृष्टि किए परिडतानी जी मन्दिर की तरफ़ गईं। वे मन में सोच रही थीं कि वे लोग ज़रूर भागा के ही बच्चे की बातें कर रहे हैं। भागा देवीरौ में कूद गई होती तो अवश्य ही वे सब उसकी ओर दौड़कर उससे कहते।

परिक्रमा करती हुई एक स्त्री ने उन्हें संबोधित किया—"माँ !"

परिडतानी जी सिर से पैर तक सिहर उठीं इस बार उन्हें

पक्का विश्वास था। यह एक भयानक समाचार उन्हें देने जा रही है।

स्त्री बोली—"आपने नहीं सुना? कितने ताज्जुब की बात है।"

पण्डितानी जी का मुख उतर गया था, उनके मुख से बात नहीं निकली कोई।

स्त्री ने कहा—"तल्ले देवद के पानसिंह का लड़का कल रात मर गया था। वह उसे देवीरौ के समसान में ले गया था रात ही को। भगवान् की माया—वह फिर जिन्दा हो गया।"

पण्डितानी जी के हाथ का लोटा छलक गया—"ऐसी बात है! शेरुवा लाटा—वह पागल न-जाने क्या बक रहा था?"

सिर पर का बड़ा भारी भार उतर गया पण्डितानी जी के। वे मन्दिर में गईं। देवता के सिर में उन्होंने लोटे का जल चढ़ाया और दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"हे देव, मेरी लाज तुम्हारे हाथ है।" उन्होंने भूमि पर माथा टेककर फिर प्रणाम किया।

शोक के मेघ हृदय के आकाश से हटने लगे थे कि फिर घिर गये—"तब उसका बच्चा कहाँ गया?" अवसन्न होकर वह लौटने लगी।

इस बार वह सड़क से ही घर को वापस गई। भागा या उसके बच्चे के बारे में उसने कुछ भी नहीं सुना और न देखा।

× × ×

माता के जाने के कुछ देर बाद बड़ा लड़का उठ बैठा और उसने पिता से फिर वही प्रश्न किया—"दीदी कहाँ हैं?"

ब्रह्मदत्त जी क्या उत्तर दें, कुछ समझ ही में नहीं आया उनके। वे इधर-उधर की बातों में टालने लगे बालक को।

लेकिन उसके मन में वह बात गड़ गई थी और जब तक उसे दीदी नहीं मिल जाती या उसके बारे में संतोषजनक उत्तर, वह चुप रहनेवाला नहीं था। "दीदी मर गई।" माता के इस भयानक वाक्य को सुनने के लिए वह कदापि तैयार न था। उसने पिता से

कहा—"शिरोमणि काका के यहाँ से बुला लाऊँ दीदी को ?"—वह उठ-कर जाने लगा।

ब्रह्मदत्त जी ने उसका हाथ पकड़ लिया—"नहीं, वह वहाँ नहीं है।"

"फिर कहाँ गईं ?"

अचानक ब्रह्मदत्त जी ने इस प्रश्न का उत्तर अपनी पत्नी के सिर पर ही लाद देना उचित समझा—"वह तुम्हारी माँ के साथ गई है।"

बेटा बोला—"कहाँ ?"

"शिव जी के मन्दिर में।"

बेटा कुछ देर के लिए चुप होकर माता के लौट आने की बाट देखने लगा। गायों के दुहने का समय हो गया था, वे रँभाने लगी थीं। बच्चे दूध की आवश्यकता में पड़ गये थे और पण्डित जी के भी चाय की चाह जाग उठी थी।

गाँव के एक आसामी का लड़का आकर उनका छोटा-मोटा काम कर जाता था। दूध पण्डितानी जी स्वयम् दुहती थीं। गायों के जंगल जाने का भी समय हो गया था। श्रीमती न जाने किस संकट में पड़ गई हों, कब लौटकर आवें यह समझकर पण्डित जी स्वयम् ही दूध का बरतन लेकर गौशाला को चले गये। चाकर आ गया था। दोनों लड़कों की देख-भाल उस पर सौंप दी गई थी। वे उससे कह गये थे बड़े लड़के को कहीं अत्यन्त न जाने देवे।

पण्डित जी के जाने पर बड़े लड़के ने चाकर से पूछा—"तुमने हमारी दीदी को देखा है ?"

वह बोला—"वह तो बीमार है न ? घर ही पर होगी।"

लड़का कहने लगा—"बीमार तो नहीं थीं, हाँ, घर के बाहर कहीं नहीं जाती थीं। क्या बिना बीमार हुए भी कोई मर सकता है ?"

चाकर बोला—"क्यों नहीं, देवीरौ में पारसाल हमारी गाय गिर कर मर गई वह क्या बीमार थी ?"

लड़के का मुँह उदास हो गया। वह निराधार दोनों हाथों को

भूमि पर लटकाकर कहने लगा—"अब कौन मुझे नहलावेगा और कौन कन्घी-चोटी करेगा ?"

"क्यों, क्यों ? लल्ला जी, ऐसी बात मुँह से क्या निकालते हो ?" चाकर ने कहा !

"तुम देख आओ, दीदी घर में भी नहीं, ठाकुरद्वारे में भी पूजा-सज्जा नहीं कर रही हैं, गौशाला में भी नहीं और बगीचे में भी साग या फूल-दूब तोड़ने नहीं गई हैं।" तभी विचार ने उसे एक नई धारा दी, वह बोला—"मैं शिरोमणि काका के यहाँ जाता हूँ।" वह जाने लगा।

चाकर ने उसका हाथ पकड़ लिया—"पण्डित जी नाराज़ होंगे।"

उसने हाथ छुड़ा लिया—"जाकर अभी आता हूँ, बैठूँगा नहीं।" वह चला गया।

छोटा भाई रोते-रोते बोला—"मैं भी जाता हूँ।"

"नहीं, कहीं गिर पड़ोगे।"—चाकर ने उसे गोद में उठा लिया।

बड़ा भाई ज्योंही आँगन से बाहर हुआ था कि उसने थोड़ी दूर पर माता को जल्दी-जल्दी घर को लौटते देख लिया। वह वहीं पर ठिठककर खड़ा हो गया। माता ने उसे देख लिया। वह और भी तेज़ी से उसके पास आई, कान पकड़कर बोली—"कहाँ जा रहा है ?"

रोते-रोते उसने जवाब दिया—"शिरोमणि काका के यहाँ दीदी को बुलाने।"

"दीदी नहीं है वहाँ। चल घर को।"

दीदी की चिन्ता में बालक को कान का दर्द भूल गया। वह माता के साथ घर की ओर पैर बढ़ाता हुआ बोला—"फिर कहाँ हैं वे ?" और वह दीदी के लिए सबसे भयानक समाचार सुनने को घबराने लगा।

लेकिन माता ने कहा "दीदी चली गई हैं"

"कहाँ गई हैं ?"

माता ने उसके गाल पर एक चपत लगा दी—"कह दिया, चुप रह ! तुझे इन बातों से कोई मतलब नहीं।"

लड़का रोने लगा। माता जबरदस्ती उसका हाथ खींचकर उसे घर ले चली। घर पर चाकर की गोद में दूसरा लड़का भी रो रहा था।

माता खीझकर बोली—"बच्चे भी सँभालकर नहीं रक्खे जाते। कहाँ हैं ?"

चाकर कहने लगा—"गौशाला में दूध दुहने गये हैं।"

"तुम इन्हें चुप कराओ।"—कहकर माता भी गौशाला को गई।

पण्डित जी दूध दुह रहे थे। बोले—"क्या हुआ ?"

"कुछ पता नहीं चला। यहाँ से मन्दिर तक किसी को कुछ मालूम नहीं है। मैं समझती हूँ वह बच्चे को लेकर गाँव छोड़कर निकल गई है।"

पण्डित जी कोई निर्णय कर न सके, वह अच्छा हुआ या बुरा। अतः धर्मपत्नी के फैसले को ही दुहराने के लिए चुप हो रहे।

धर्मपत्नी बोलीं—"इसलिए मैं यह कह देती हूँ कि भागा को उसके मामा आकर ले गये इलाज के लिए।"

"कब ले गये ?"

"रात आए, सुबह ले गये।"

"और गाँव में किसी को खबर न हुई ?"

"गाँववालों का ठेका है क्या ? न हुई खबर, जल्दी में थे।"

ब्रह्मदत्त जी बोले—"ठीक है, जब कोई पूछेगा तो यही कहेंगे, लेकिन···" सहसा उनकी शंका ने कहा—"लेकिन अगर वह यहीं कहीं गाँव में निकल आई तो ?"

"मैं कहती हूँ नहीं है वह यहाँ।"—बड़ी स्थिरता से श्रीमती बोलीं

"ठीक है, यही कह दो तब। मेरा भी यही पक्का विश्वास है वह यहाँ से चली गई है।"

पण्डितानी जी ने उनके हाथ से दूध का बरतन ले लिया और स्वयं दुहने लगीं।

उधर देवगिरि जी पानसिंह के बच्चे को देखकर मन्दिर में वापस आए। लाल जमीन के कंवल के न मिलने से उनके मन में कोई उत्साह पैदा न हुआ था।

धूनी को घेरकर जमात बैठी हुई थी। एक ने प्रश्न किया—"कैसा है पानसिंह का बेटा?"

"ठीक है, कुछ सर्दी लग गई है।"—देवगिरि जी मन्दिर की तरफ बढ़ने लगे।

"बैठिए बाबा जी, तमाखू पी लीजिए।"—एक भक्त बोला।

"सभी आवश्यक काम रह गये हैं। आज बहुत-सा समय यों ही चला गया।"—बाबा जी बोले।

उनको निश्चय से कोई विचलित नहीं कर सकता था। सभी उनके स्वभाव के इस सत्य से अच्छी तरह परिचित थे। बाबा जी ने गौशाला खोलकर गाय और बछिया को जंगल की ओर हाँक दिया। फिर मन्दिर के भीतर स्वच्छ किया। उसके बाद झाड़ू लेकर मन्दिर की परिक्रमा साफ करने लगे। वे किसी भी परिस्थिति में मन्दिर का छोटे-से-बड़ा काम तक किसी अन्य को नहीं सौंपते थे।

फिर बगीचे में चले गये एक कुदाली लेकर। एक पालक की क्यारी समाप्तप्राय थी। कुछ अच्छे पेड़ बीज के लिए छोड़ दिये थे, उन्हें छोड़कर बाकी पेड़ उखाड़कर गाय के लिए रख दिये। फिर सारी क्यारी खोदकर समतल कर दी। इस समय तक धूनी पर के लोग चल दिये थे। बाबा जी ने वहाँ जाकर फिर आँगन झाड़ा और धूनी पर की चीजें व्यवस्थित कर रख दीं।

आकाश की ओर दृष्टि की उन्होंने। सूर्य बिलकुल सिर पर आ

गये थे। वे भागा के पास जाने का विचार कर रहे थे कि एक पण्डित जी बगल में पोथी-पत्रा दबाये आ पहुँचे किसी यजमान से दुर्गा के पाठ का वरण लेकर।

बाबा जी से एक आसन माँगा उन्होंने और मन्दिर में पाठ के लिए बैठ गये। बाबा जी ने उनसे कहा—"मैं किसी आवश्यक काम में लगा हूँ। कोई आवे तो मुझे छेड़ना मत।"

देवगिरि जी ने गौशाला में जाकर ताला खोला। उनकी आहट पा भागा उठी और साँकल खोलकर विह्वल स्वर में पूछने लगी—"महाराज मेरा बच्चा ?"

"नहीं मिला!"—देवगिरि जी ने द्वार पूर्ववत् बन्द करते हुए कहा।

"फिर मैं कैसे जीवित रहूँ ?"—विश्वासपूर्वक उसने पूछा।

"एक नहीं, मैं तुम्हारे लिए सैकड़ों बच्चे लाया हूँ।"

"मैं नहीं समझती आपकी बात।"

"समय आवेगा, तुम भी समझोगी और इस समाज को भी समझाना पड़ेगा।"

कुछ सांत्वना मिली उसे—"लेकिन मैं पापिनी···"

"नहीं तुम देवी हो। इस मन्दिर में मेरी आयु जिस अस्पष्ट ध्यान की साधना में बोती है, तुम उसी की स्थूलता धारण कर आई हो। तुम्हारी जय हो!"—देवगिरि जी ने उसके चरणों में माथा नवाया।

भागा तेजी से पीछे को हट गई—"महात्मा जी! महात्मा जी! यह आप क्या कर रहे हैं? मैं आपके चरणों की धूल की भी समता नहीं रखती।"

देवगिरि जी कहने लगे—"हमारे भी दानव, मानव और देवता सभी के अंश मौजूद हैं। उनमें से जिसे भी हम जागरित कर लें। मैंने मन्दिर में एक विचित्र सपना देखा है। उसका एक-एक कण मुझसे कह रहा है—यहाँ आज एक देवी आई है। समाज के तिरस्कार और अत्याचार

में उसका जन्म हुआ है।"

"लोग इसका विश्वास क्यों करें जब मुझे ही इसकी प्रतीति नहीं?"

"प्रतीति हो जायगी।"

"कैसे?"

"ध्यान और उसकी धारणा से।"

"वे क्या हैं?"—अत्यन्त विमूढ़ होकर भागा ने यह प्रश्न किया।

"वाह्य जगत् की प्रतिध्वनि या प्रतिदर्शन ही ध्यान है और उसकी एकता ही धारणा है।"

"आप मुझे मन्त्र देंगे?"

"इच्छा रखने पर वह स्वयं ही प्रत्यक्ष हो जायगा।"

फिर कुछ याद आई उसे और वह विचलित होकर बोली—"पर आप छिपाकर कैसे और कितने दिन रख सकेंगे मुझे?"

तुम्हें प्रकट कर छिपा दूँगा।"

"किस तरह?"

"तुम असूर्यपश्या होकर रहोगी।"

"वह क्या हुआ?"

"सूर्य के उपजाए हुए अन्धकार में तुम्हारा निवास होगा। वह तुम निरन्तर सूर्य के ध्यान से अपने भीतर दिव्य ज्योति जागृत करोगी। इस व्रत में तुम्हारा बन्धन सार्थक हो जायगा। इसमें तुम छिपकर भी प्रकट रहोगी न?"

"हाँ, रहूँगी।"—प्रसन्नता से भागा बोली।

"तुम कैलास से यहाँ आई हो। सूर्य के आलोक में तुम यात्रा नहीं करती हो इसी से तुम्हारा यहाँ आना किसी को ज्ञात नहीं हुआ। तुम अन्धकार में ही अपनी कुटी से बाहर निकलकर स्नानादि से निवृत्त होओगी इसी से तुम यहाँ सदैव ही अप्रकट रहोगी"

"हाँ, रहूँगी।"—फिर उसके मुख से निकल पड़ा।

"तुम किसी को न देखोगी और कोई तुम्हें न देख सकेगा, तुम मौनव्रत का पालन कर वाणी के अन्धकार में रहोगी।"

"रहूँगी।"

"तुम सादा भोजन कर स्वाद के अन्धकार में निवास करोगी।"

"हाँ, करूँगी!"

"ऐसे निविड़ अन्धकार के जगत में रहने के लिए जब तुम्हारे हृदय में प्रीति हो गई है तो प्रतीति भी हो जायगी—मार्ग स्वयं खुल पड़ेगा।"

"गुरुदेव की जय हो!"

"असूर्यंपश्या की जय हो!"

६

रात के उस अन्धकार में जैकिशन की नींद खोलकर भागा उसके जीवन में एक विष बो गई। उसने उसके लिए अपने घर के द्वार नहीं खोले, पर वह यह अनुभव करने लगा मानों वह उसका हृदय तोड़कर उसके भीतर घुस गई ! उसकी भावना और संसार दोनों को डाँवाँडोल कर गई।

पड़ा-ही-पड़ा वह विचार करने लगा। कहने को उसने कह दिया था कि वह बच्चा उसका नहीं है। पर कुछ देर बाद जब उस बच्चे के रोने की प्रतिध्वनि उसके कानों में जाग उठी तो वह उसे उसकी ही चिर-परिचित ध्वनि जान पड़ी ! बहुत कठोर शब्द कहकर उसने उसका तिरस्कार कर दिया, पर वह बच्चे का रुदन उसके प्राणों की गहराई में घुसकर बस गया ! जितना वह उसे भुलाने की कोशिश करने लगा, उतना ही वह उसके भीतर घर करने लगा।

"कितनी विनय और शील-भरी वह नारी थी ?"—जैकिशन की अन्तरात्मा उसे भर्त्सना देने लगी—"तेरे ज़रा-से डराने-धमकाने से वह बिचारी चुपचाप उस अन्धकार में चल दी। तू कहता है, वह तुझे बहका ले गई। हृदय पर हाथ रखकर सच बोल। तू अपने को ब्राह्मण कहता है ? यही तेरी तेजस्विता और क्या यही तेरा नय है ? मनुष्य की दुर्बलता की बात छोड़ भी दी जाय, तो सत्य पर कारिख पोत देना कहाँ का न्याय है ? उस दिन मन्दिर में जब वह पूजा कर रही थी, किसने उसके चरणों में फूल चढ़ाकर कहा था ?—तुम किसी की पूजा करती हो, तो कोई तुम्हारा भी पुजारी है। जब वह विभास में अपने कपड़े धो रही थी, तो किसने उसके सूखते हुए कपड़े छिपा दिये थे। और एक दिन जब वह अपने मकान के पास अपनी गाय ढूँढ़ने गई थी तो कौन उसे झूठा पता बताकर गलत राह पर ले गया था। तम कहते हो

वह तुम्हें बहका ले गई ?

"तूने अपने अविराम चिन्तन के जाल में उसकी कल्पना को जकड़ लिया। तूने अपने गीतों की डोर में उस निरावलंबा को लपेट लिया। तू छिपी हुई छाया बनकर उसे घेर लेने के लिए सुबह से शाम तक सचेष्ट रहने लगा। फिर तूने राहु बनकर उसे ग्रस ही लिया। और तेरे पापों की चरम सीमा अन्त में वहाँ पहुँची, जब वह तेरे द्वार पर शरणार्थिनी होकर आई और तूने उसे ठोकर मारकर निकाल दिया! पापिष्ठ! तेरा सारा पूजा-पाठ यहाँ पर समाप्त हो गया और तू चाण्डाल हो गया!"

जैकिशन ने करवट बदली और उसके भीतर के पाप ने अन्तरात्मा के मुँह में कपड़े ठूँसकर उस आवाज़ को बन्द कर दिया, वह फिर सोने की चेष्टा करने लगा। फिर बाहर से किसी नवजात शिशु का रोदन सुना। पहले उसे यह निश्चय न हो सका कि वह ध्वनि उसके स्वप्न में है या उसकी जागृति में—उसके घर के भीतर है या बाहर! आँखें मलकर उठ बैठा वह। कमरे में नहीं थी वह आवाज़! फिर बाहर सुनाई दी। उसने समझा शायद फिर भागा लौट आई। उसने द्वार खोलकर इस बार उसका हाथ पकड़ उसे गाँव के बाहर कर आने का विचार किया। सहसा वह आवाज़ फिर नहीं सुनाई दी। वह फिर करवट बदलकर सो रहा।

फिर उसे कुछ नींद आने लगी तो फिर उसी बच्चे के रोने ने उसकी नींद तोड़ दी। वह क्रोध में भरकर उठा, द्वार की साँकल खोलकर बाहर देखा, किसी का पता नहीं था। वह आँगन में आया, उसने आकाश के तारों पर दृष्टि डालकर समय का ज्ञान प्राप्त किया। वह सूर्योदय से बहुत पहले ही उठ जाने का अभ्यस्त था। अभी सूर्योदय में कुछ देर थी। वह भीतर चला गया और उसने द्वार बन्द कर लिये।

उसने फिर न सोने का निश्चय किया। सिरहाने से दियासलाई की डिबिया निकाली। उसकी एक तीली जलाई। मिट्टी के दिये में तेल

बहुत कम था। दिया उठाया। दीवट में चूकर कुछ जमा था, उसे दीपक में उँडेलकर उसकी बत्ती जलाई, उजाला किया।

सुबह उठकर उसका पहला काम था चरस भरकर उसकी दम लगाना। बिना एक दम लगाए उसे स्फूर्ति ही न मिलती थी। इसके बाद वह एक झोले में लोटा, धोती, पंच-पात्र और पाठ की पुस्तक लेकर मन्दिर को चला जाता। वह विभास नदी के पार जंगल जाता, फिर स्नान कर देवी-कवच का ज़ोर-ज़ोर से पाठ करता हुआ सूर्योदय तक मन्दिर में पहुँच जाता। कुछ देर धूनी के पास बैठकर भक्त-मण्डली के बीच में कभी गाँठ की और कभी दूसरों के मत्थे एकाध चिलम चरस की और फूँकता। फिर मन्दिर में जाकर घण्टे भर से भी अधिक पाठ-पूजा करता। उसका यह नियम प्रायः अटूट ही रहता था। कभी वह पुरोहिताई में नियुक्त रहता तो भी वह देर या सबेर इस नियम को पूरा करता ही रहता था।

दिया जलाकर भूमि पर बैठ गया वह, गाल पर हाथ रखकर सोचने लगा—"कहाँ चली गई होगी वह? मैंने क्यों नहीं उसकी बात मान ली? यहाँ क्या रक्खा है मेरा?" कल्पना ने उत्तर दिया—"जन्मभूमि है, पितरों का बनाया घर है, खेती है, बिरादर हैं, जजमान हैं।" उसने सोचा—"सब झूठा, सब मतलब के। एक निराश्रिता को सहारा देना ही चाहिए, जब कि मेरे ही कारण उसके सम्बन्ध छूटे हैं।"

अचानक जैकिशन ने फिर वही रोने की आवाज़ सुनी। वह मन में बोला, "नहीं, कुछ नहीं, सिर्फ़ मेरा एक भ्रम है। मेरी आँखों में नींद छाई है और आलस्य स्वप्न के जगत में उसी बच्चे की प्रतिध्वनि जगा रहा है। वह चली गई। मैं उसके स्वभाव को जानता हूँ। उसमें हठ और दुराग्रह का कोई चिह्न ही नहीं था। वह अब कभी नहीं आयेगी यहाँ और मैं भी कहीं न पा सकूँगा उसे।"

वह उठा। उसने आग सुलगाई। जेब से एक बत्ती पहाड़ी चरस की निकाली, कुरते में लपेटकर मुँह में दी, दाँतों से एक टुकड़ा उसमें से

तोड़ा और चिलम में भरकर लगा पीने।

चिलम पीकर उसने दूर रख दी। नशा चढ़ा ही था उसे कि उसने फिर वही बच्चे की आवाज़ सुनी अपने घर की बगल से। वह बोल उठा—"नहीं, यह नशे का भ्रम है!"—फिर सुनी वही आवाज़। फिर बोल उठा—"नहीं, नशा भ्रम नहीं है। वह आकाश-मण्डल में सूक्ष्म स्तरों तक हमारी चेतना को पहुँचा देता है।"

वह फिर द्वार खोलकर बाहर आया। उसके मकान की बगल से गाँव के भीतर को एक रास्ता जाता था। वहाँ पर उसने देखा अस्पष्ट ज्योति में एक मनुष्य अपनी छाती से लगाए एक रोते हुए बालक को ले जा रहा था।

जैकिशन ने चिल्लाकर पूछा, "कौन है?"

"पालागन पण्डित जी, मैं हूँ आपका सेवक पनुवा।"

जैकिशन ने भागा की गोद में जैसे बालक का रोना सुना था, वैसा ही रोना पानसिंह की गोद में सुना। वह गायक था, स्वरों के भेद और सामंजस्य को खूब समझता था। इस समय नशे की तीव्रता में और भी गहराई में उसका मस्तिष्क काम कर रहा था। उसने कर्कश स्वर में पूछा—"तुम इस बालक को कहाँ से उठा लाये? और क्यों बड़ी देर से मेरे घर की परिक्रमा कर रहे हो?"

ठिठककर जहाँ का तहाँ खड़ा रह गया पानसिंह। वह खाँसकर बोला, "कहाँ से उठा लाया हूँ पण्डित जी, कहीं से नहीं।"

"देखो, झूठ नहीं बोलते।"

"पण्डित जी, यह मेरा ही बच्चा है। मर गया था, लेकिन फिर जी उठा, भगवान् की माया! दूसरा और कौन मुझे अपना बच्चा दे देता। उजाले में ले आऊँ इसे, आप देख लीजिए।"

जैकिशन के मन में नशे की फिर दूसरी लहर उठी और उसने बड़े सौम्य भाव से कहा—"यह तुम्हारा ही बेटा है?"

"हाँ, चलिए पूछ लीजिए गाँव में। रात ही तो पैदा हुआ था।"

"रात ही में मर गया ?"

"हाँ, पण्डित जी !"

"और रात ही में जी उठा ?"

"हाँ, महाराज !"

"धन्य है उस अलख-अगोचर का भेद किसे मिला ?"—पण्डित जी ने झूमते हुए कहा।

"क्या बात कही आपने ? आपकी सौ बरस की उमर हो। एक पाठ पढ़ दीजिएगा आप मन्दिर में।"—पानसिंह तेज़ी से उस अँधेरे में अदृश्य हो गया।

जैकिशन ने फिर द्वार ढक लिये। वह मन में बोला—'कैसे आश्चर्यजनक रीति से घटनाएँ मिल जाती हैं। मैं समझा भागा अपने बच्चे को सड़क में छोड़कर अपने घर चली गई और पनुवा उसे उठा लाया।'

जैकिशन आग के पास बैठकर आग तापने लगा और चीड़ की लकड़ियों की लपट, धूम और अंगारों में भाँति-भाँति के चित्र बनाने लगा। उसका नशा उखड़ गया था। उसने एक चिलम तमाखू भरकर पिया। फिर वही भागा और उसके बच्चे की स्मृति उसके मानस में मँडलाने लगी। वह मन को उनसे हटाकर दूसरी ओर ले जाने लगता, वह फिर उसी में खिंच जाता।

"भागा के लिए केवल एक ही मार्ग है और वह है देवीरौ के गहरे पानी में डूब मरने का। अब बहुत देर हो गई, मैं जाकर उसे बचा नहीं सकता, लेकिन मर तो सकता हूँ।...पर इस मृत्यु से लाभ ही क्या ? किसी को बचाने के लिए मरना तो एक बात हुई। एक मरने वाले के साथ मर जाना—इसका कोई अर्थ नहीं है।"

जैकिशन ने फिर एक चिलम भरी चरस की। धीरे-धीरे उसके मन्दिर जाने का समय आ पहुँचा, लेकिन उसके पैर भारी हो गये और वह कहीं नहीं गया।

उस दिन उसने गाँव के सोते में ही स्नान किया और घर ही पर संध्या-पूजा करने बैठ गया चाय पीकर।

पूजा करने में कुछ मन नहीं लगा उसका। चेतना किसी अस्पष्ट लोक में भागा के पीछे-पीछे फिर रही थी। कभी बच्चे को देवीरौ में डुबाकर भागा को फिर उसके घर पहुँचाती उसकी कल्पना, कभी बच्चे को छाती से लगाये उसे देश-त्यागिनी बनाती। कभी बच्चे को गाँव के द्वार-द्वार ले जाकर वह भागा को उसके पाप का भण्डाफोड़ करती हुई देखता।

"नहीं, वह ऐसी निर्लज्ज नहीं है। मृत्यु की ताड़ना पर भी उसके मुख से ये शब्द नहीं निकलेंगे।"—जैकिशन ने उस भय को मिटाकर धीरज की साँस ली।

अन्त में बच्चे-सहित भागा को देवीरौ के जल में डुबाकर उसने छुटकारा पाने की कोशिश की। ध्यान में यही सब कुछ घूम रहा था उसके। हाथ की उँगलियों में न-जाने मुद्रा-न्यास किसका था उसके और अधरों पर उच्चारण कैसा? किसी प्रकार संध्या-पूजा का अमल पूरा किया जैकिशन ने। वह उठा। मस्तक पर भस्म की रेखा थी, उसके ऊपर ऊर्ध्व चन्दन और रोली का बिन्दु! वेश के आवरण में आज कलुष छिप सकेगा या नहीं। यही चिन्ता रह-रहकर उसके चुभ रही थी।

मन को सबल करने के लिए एक चिलम भरकर फिर पी उसने। भोजन की छुट्टी कर दी, फिर थोड़ी-सी चाय उबालकर पान की। पहले सोचने लगा—'बीमारी का बहाना बना लम्बी तानकर सो जाऊँ।' फिर उस कायरता के विचार का त्याग कर दिया और कपड़े पहन बाहर जाने को उद्यत हो गया।

कमरे में ताला देकर सोचने लगा—किधर जाऊँ? दूर से लोगों के मुख-भावों और उनकी बातों को टटोलता हुआ वह बाहर निकला। सुबह से चरस की दम लगाते-लगाते उसका माथा घूम रहा था। अपनी कुशल को गौण बनाकर उसके मुख से यह श्लोक निकल पड़ा—"सर्वे कुशलिनः संतु सर्वे संत निरामया।" इस प्रकार विश्व-कल्याण की

भावना में निमग्न जैकिशन डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सड़क पर आया। एक-दो जो उसे मिले उनके आशीर्वादों की वर्षा की उसने। उनकी किसी बात से अपने अपवाद का कोई सूत नहीं मिला उसे।

कुछ ही दूर चलकर वह सड़क छोड़कर विभास के किनारे उतर गया और रेतीरौ की तरफ़ चला। उधर से होते हुए मन्दिर की तरफ़ जाने का उसका विचार था। नशे के प्रवाह में उसकी विचार-धारा एक मार्ग से होकर नहीं बढ़ रही थी। मन ठिकाने नहीं था, विचार भी अस्थिर और भिन्न-भिन्न !

शेरुवा लाटा वहीं नदी-किनारे गायें चरा रहा था। गायें चरा तो क्या रहा था, वे खुद चर रही थीं। वह नदी के प्रवाह में घिसे हुए एक गोल शिलाखण्ड के सहारे बैठा हुआ एक चकमक पत्थर पर लोहे के टुकड़े से चोट चलाकर चिनगारियाँ निकाल रहा था, लेकिन जो सूखी पत्तियाँ मसलकर उसने अपनी चुटकी में दबा रक्खी थीं, वे उन चिनगारियों की सर्वथा अवहेलना कर रही थीं। वह आग सुलगाना चाहता था, लेकिन उसे सुलगाना स्वीकार नहीं था।

सामने एक पत्थर के सहारे उसने तीन बाँज की पत्तियों को लकड़ी के तिनकों से टाँक कुलफी का आकार देकर चिलम बना रखी थी। उसमें उसने तमाखू भी भर रखा था, लेकिन अग्नि के बिना उसका वह यज्ञ अधूरा ही था।

पण्डित जैकिशन का ध्यान उसकी तरफ़ नहीं था। उसने उन्हें आगे बढ़ता हुआ देखा तो चिल्ला उठा—"प-पण्डित जी य-यहाँ आओ।"

जैकिशन ने पीछे फिरकर देखा शेरुवा लाटा, आधा हकला और आधा पागल। उसकी पुकार उन्हें आकर्षित न कर सकी। बड़ी गम्भीरता से मुँह फिराकर वे फिर अपनी राह चलने लगे।

"य-य-य दे-देखो !"-उसने उन्हें वह पत्तियों की चिलम उठाकर दिखाई—"इ-इ-इसमें बा-बा-बारुद भी भ-भर रक्खी है अ-अ-असली।

ए-ए एक दम ल-ल-लगालो न-नहीं प-प-पछताओगे ।"

जैकिशन ने फिर पीछे को मुँह किया, लेकि फिर मुँह फिरा लिया ।

"अ-अ-अच्छा प-पण्डित जी, अ-अब क-क-कहोगे कि-किसी काम को ।"—शेरुवा नाराज़ होकर बोला ।

पण्डित जी लौट गये । शेरुवा अक्सर उनके लिए जंगलसे लकड़ी काटकर दे जाता था, कभी उनके कपड़े धो जाता था, घर लीप जाता था । औ सबसे बड़ी बात, फसल में उनके गाँजे और चरस के संग्रह को भी पूरा करता था ! जैकिशन को शेरुवा की अवज्ञा करने का साहस न हुआ । उन्होंने उसकी चुनौती के आगे सिर झुका दिया । वे उसके पास चले आए और कहने लगे—"मैं न पिऊँगा । मैंने अभी पी रक्खी है ।"

"क्या-क्या पी रक्खी है। गे-गे-गे ऐसी क-कभी पी न होगी । स-सलाई नि-निकालो, तभी तुम्हारी खु-खुशामद कर रहा हूँ, न-नहीं तो इसमें कौन हि-हिस्सा करनेवाला था ।"—शेरुवा बोल । उसने पास ही सूखी चीड़ की पत्तियाँ और कुछ लकड़ी इकट्ठा कर रक्खी थीं ।

जैकिशन ने दियासलाई रगड़कर शेरुवा लाटे की बड़ी देर से अवरुद्ध कामना की पूर्त्ति कर दी । आग सँभालते हुए वह बोला "तु-तु-तुमने नहीं सुना ? ए-ए-एक बच्चा पड़ा मि-मिला उसे ।"

जैकिशन के होश उड़ गये ! बड़ी चिन्ता में पड़ वह बैठ गया शेरुवा लाटे की बगल में और धीरे-धीरे पूछने लगा—"कहाँ मिला ?"

"यहीं कहीं, नदी के किना ।"

अब तो और भी जैकिशन के ऊपर का आकाश टूटने लगा और नीचे की धरती धसकने लगी । साहस कर उसने पूछा—"किसका लड़का था ?"

"मैं-मैं क्या जा-जानूँ ? घ-घ-घर-घर ना-नाम क-करए तो तु-तुम कराते फिरते हो बोला

बड़ी उदासी के साथ जैकिशन ने फिर और एक प्रश्न किया—"किसको मिला ?"

"प-प-पनुवाँ को ।"

चिन्ता का सारा बोझ भूमि में पटककर जैकिशन उसी समय उठ गया। उसने शेरुवा की रूखी खोपड़ी में एक धप जमाकर कहा—"तू लाटा ही नहीं, बुद्धू भी है ।" उसकी मैली और फटी टोपी भूमि पर गिर पड़ी।

टोपी उठाता हुआ शेरुवा हतप्रभ होकर बोला—"क्यों क्या-क्या हुआ ?"

"वह पानसिंह का ही तो लड़का था।"

"तो-तो यहाँ जं-जंगल में क्यों पै-पै-पैदा हुआ ? घ-घ-घर में जगह नहीं थी ?"

"तेरे-जैसे गधे के साथ खोने के लिए समय नहीं है मेरे पास।"—जैकिशन चलता बना।

शेरुवा उसका हाथ खींच लाया और उसे फिर बैठाकर बोला—"ए-एक द-दम खींचो तो स-स-सही। अभी भ-भरता हूँ, कोयले प-पड़ ग-ग गए।"

शेरुवा ने उस पत्तों की चिलम में कोयले रखकर उसे सुलगाया, फिर जैकिशन को पीने के लिए दी। जैकिशन ने खींचकर दम लगाई। फिर लाटे ने दम लगाई और फिर जैकिशन ने पी।

दम लगाकर जब जकिशन उठने लगा तो उस का माथा घूमने लगा। लेकिन वह नौसिखुवा नहीं था। घबराया नहीं, कुछ देर बैठ गया। अब बैठे-बैठे ही धरती घूमने लगी। उसने पूछा—"क्यों रे शेरुवा क्या पिला दिया तूने ?"

"त-तमाखू, थो-थो-थोड़ा-सा गा-गाँजा।"

"यह तो रात-दिन की खुराक है, फिर चक्कर क्यों आ रहा है ? काला धतूरा तो नहीं था ?"

"न-नहीं म-महाराज ! घ-घबराओ न-नहीं । अ-अभी कै-कैलास प-पर्वत में म-महादेव जी दि-दिखाई देंगे ।"—ताली बजाता हुआ शेरुवा बोली—"ब-बस आ-आज तु-तुम्हारी दम भी दे-देख ली ।"

"क्या हुआ है मुझको ?"—जैकिशन हिम्मत रख लड़खड़ाता हुआ मन्दिर की तरफ़ चल दिया । नशा बड़ी जोर का चढ़ गया था उसे । उस नशे में वह फिर वही बच्चे का रोना सुनने लगा । कभी वह उसे नशा समझने लगा, कभी सत्य । उसने आगे बढ़कर नदी के पानी में सिर धोया और फिर मन्दिर को चला गया ।

बाबा जी ने उसे देखकर कहा—"पण्डित आज सुबह नहीं आए तुम ।"

"तबीयत ठीक नहीं है । बच्चा रोरहा है, सुन रहे हैं आप ?"

"कहाँ ?"

जैकिशन ने गौशाला की तरफ़ उँगली उठाई । देवगिरि जी पहले घबराए, फिर बोले—"तुम नशे में हो, इतना पियोगे तो जरूर किसी दिन पागल हो जाओगे ।"

७

उस दिन से जैकिशन के दिमाग़ में कुछ हेर-फेर ज़रूर हो गया। कुछ उलझन, कुछ विस्मृति और कुछ लापरवाही की झलक प्रकट होने लगी उस पर। पहले भी कुछ-कुछ थी, लोग तब उसका कारण उसका नशा-सेवन समझते थे। आज भी तो वही है। लेकिन जैकिशन कहता है शेरुवा ने उसे महाभयानक श्याम धतूरा तमाखू में पीसकर पिला दिया।

संध्या-पूजा, जीवन-चर्या, जजमानी-वृत्ति, खेती-पानी सब पूर्ववत् चल रहे थे, पर उनके बीच की समय की विभक्ति का लोप हो गया था। कभी सोता ही रहता, कभी जागता ही। कभी पूजा ही करता रहता, कभी गाता ही। कभी बक-बक ही करता रहता, चुप-चाप मुँह सीकर ही बैठ जाता। कभी हँसता, कभी रोता। समय-असमय कुछ न देख नदी में स्नान करने लगता दिन में कई बार। चलते-चलते दौड़ने लगता। बातें करते-करते बीच में ही उठकर भाग जाता। उसके गीत की कला भी इस व्यतिक्रम से अछूती न रह सकी। कभी परम मोहक स्वर-सौंदर्य की सृष्टि करता और कभी निरा बेसुरा और बेताला!

उसके शयन और जागरण दोनों में एक यति पड़ गई किसी अज्ञात शिशु के रोदन की! लोग नहीं समझते थे, एक यथार्थता पर ही उस करुण ध्वनि का जन्म हुआ था। जैकिशन की कल्पना में बार-बार की आवृत्तियों से वह सजीव हो उठी थी। जिसे लोग भ्रम कहते थे, वह जैकिशन का सत्य था, जिसे दुनियाँ पागलपन कहती थी, वह उसकी वास्तविकता थी।

उस दिन पानसिंह के लड़के का नामकरण था। पानसिंह कई दिन पहले से ही जैकिशन को उस दिन की रोज़ याद दिलाता आ रहा था।

अब उसका लड़का ठीक हो गया था। वह भगवान् को विशेष धन्यवाद देने के लिए कुछ अतिरिक्त पूजा-पाठ भी करना चाहता था। सत्यनारायण जी की कथा भी उसने बोल रक्खी थी। इन सब चीज़ों का भार जैकिशन के ही ऊपर था। उसकी विक्षिप्तता से उसके तर्क, गणित, पूजा-पाठ या विधि-विधान में कोई अन्तर नहीं आया था। जो कुछ उच्छृंखलता आई थी, वह समझ के लौटने पर उसका प्रतिकार कर लेता था। उसकी इस दशा से अनेक लोगों की उसके ऊपर भक्ति बढ़ गई थी। वे उसके जीवन की इस असामान्यता को भगवान् की विशेष कृपा समझने लगे थे।

नामकरण के कारण उस दिन जैकिशन घड़ी-भर रात रहते ही उठ गया था। नहा-धो मन्दिर में पूजा-पाठ कर घर लौट आया फिर जाने क्या सूझी कि द्वार बन्द कर दीपक जलाया और बिस्तर में जाकर सो गया। उधर पानसिंह ने सोचा न जाने पण्डित जी किधर चल दें। पहले दिन आठ बजे सुबह का लग्न बताया था उन्होंने। सात बज गये, तो पानसिंह उनके घर पहुँचा, देखा द्वार भीतर से बन्द है। उसने द्वार खटखटाकर पुकारा—"पण्डित जी!"

जैकिशन जाग ही रहा था बोला—"भाई, तुम्हारा ही काम कर रहा हूँ। राशि-नक्षत्र के हिसाब से बच्चे का नाम टटोल रहा हूँ। बड़ा कठिन काम है। यह तुम जानते ही हो शेरुवा ने मुझे श्याम धतूरा घोटकर पिला दिया।" उसने द्वार खोल दिये।

"दिया जलाकर क्या कर रहे हैं आप?"—पानसिंह ने पूछा।

"दिया जलाकर क्यों नहीं? बच्चा रात में पैदा हुआ है इसीलिए दुनियाँ को असलियत क्या मालूम? अँधेरा कर इसीलिए नकली ज्योति में सत्य को टटोल रहा हूँ।"—जैकिशन ने बड़ी गम्भीरता से कहा।

पानसिंह हाथ जोड़कर बोला—"धन्य है महाराज! मैं मूर्ख क्या जानूँ? लेकिन आपने आठ बजे का लग्न बताया था।"

"आठ अभी कहाँ बजा है ? पहले नाम होगा तभी तो नामकरण होगा।"

"कुँडली तो आपने कल ही बना ली थी !"

"नहीं, उसमें कुछ गलती रह गई। तुम्हारा यह लड़का बड़ा भाग्यवान् है।"

"सब आपका आशीर्वाद है।"

"लेकिन तुम्हारा यह बच्चा इतना क्यों रोता है ? रात को सत्रह दफे और दिन को बीस दफे यह मेरी नींद तोड़ देता है।"

"नहीं महाराज, अब तो नहीं रोता यह। दो-चार दिन जरूर रोया था। अब तो उसकी तबीयत बिलकुल ठीक है। भूख लगने पर रोता है, सारी सृष्टि रोती है, लेकिन दूध की धार के मिलते ही प्रसन्न हो जाता है। अच्छा तुम चलो, मैं आता हूँ।"—जैकिशन बोला।

न-जाने ठीक समय पर पण्डित जी कहाँ को चल दें, इस अविश्वास पर पानसिंह डगमगाता हुआ वहीं पर खड़ा रह गया।

"पानसिंह, क्या तुम मुझे पागल समझते हो ? मेरे कर्त्तव्य का ज्ञान क्या भूला गया है ? नहीं, जरा भी नहीं, वह श्याम धतूरा मेरे पेट से निकलेगा कैसे नहीं ? और एक आवाज मेरे प्राणों में फाँस होकर गड़ गई है, वह भी निकल जायगी। न-जाने वह आवाज किसके बच्चे की आवाज है ? पानसिंह, बड़ों की आवाज में इतना दर्द नहीं होता। उनकी सहन-शक्ति भी बड़ी होती है और वे अत्याचार का सामना भी कर सकते हैं। लेकिन एक निरीह असहाय शिशु का क्रंदन—उससे अधिक मर्मांतक ध्वनि धरती पर और दूसरी कौन है ?" वह गाकर बताने लगा—"सा-ध् ध्—कोमल धैवत ! और तुम्हारा लड़का रोता नहीं अब, तुम कहते हो। लेकिन वह शुरू में ही अपने पहले रुदन से मेरे हृदय की बाँसुरी में जो छेद कर चुका है—वही तो कोमल धैवत है !"

फिर पानसिंह ने घबराकर हाथ जोड़ लिये—"महाराज ! मैं

मूरख, हलवाहा। आपके शास्त्र-ज्ञान की बात क्या जानूँ?" वह घर के बाहर मुँह निकालकर क्षितिज पर सूर्य की अवस्थिति देख रहा था।

"जाओ, आ पहुँचा मैं। दो हरफ़ और लिखने हैं। जच्चा-बच्चा को नहला-धुलवाकर नये कपड़े पहनाओ।"

"आप मंत्र पढ़ेंगे तभी तो।"

"पानी तो गरम करो।"

पानसिंह निरुपाय होकर चला गया, पर अपने आँगन से जैकिशन के मार्ग में आँख गड़ाये खड़ा हो गया। कुछ देर में आ पहुँचे पण्डित जी। सब लोग प्रसन्न हो गये। पानसिंह का उत्साह असीम हो उठा।

जैकिशन ने शंख-ध्वनि कर मंत्रों की झड़ी लगा दी। सारा घर गूँज उठा। गणेश, देवता और ग्रहों की पूजा हुई, हवन, मंत्र और पंचगव्य से जच्चा-बच्चा की शुद्धि हुई। जैकिशन ने शंख के छिद्र से बच्चे के कान में उसका नाम सुनाया—"कृष्णदत्त नामक बालक चिरायु हो!"

चारों ओर से—"हैं! हैं!" की आवाजें उठीं।

पानसिंह हाथ जोड़कर कहने लगा—"महाराज, मैं तो क्षत्रिय हूँ, यह तो ब्राह्मण का नाम है।"

"ब्राह्मण का कैसा नाम? कृष्णदत्त का अर्थ है कृष्ण का दिया हुआ। कृष्ण क्या ब्राह्मण थे? फिर सभी तो कृष्ण के दिये हुए हैं।"

"नहीं महाराज, इसका नाम कृष्णसिंह होना चाहिए। क्षत्रिय को सिंह का ही नाम उचित है। ऐसा ही हमारी जाति और कुटुम्ब में प्रचलित है।"—पानसिंह का एक बिरादर बोला।

"कुंडली में यही नाम लिखा गया है, वह मिटाया नहीं जा सकता। व्यवहार में तुम जिस नाम से भी इसे पुकारो पुकार सकते हो। कोई रोक नहीं सकता तुम्हें, तुम इसे कृष्णसिंह कहो चाहे कृष्ण-गाय। न तो इसके हाथ-पैरों में पंजे निकलेंगे, न सिर पर सींग मेप

नाम रखा गया था जयकृष्ण, वह घिसते-घिसते हो गया जैकिशन। मैं किससे क्या कहूँ ?"—जैकिशन बोला।

रात को श्री सत्यनारायण जी की कथा का आयोजन किया गया था, तल्ले-मल्ले देवद में सभी को निमन्त्रण था। ब्राह्मणों को सूखा प्रसाद बाँटने का और बिरादरी के लिए भोजन का प्रबन्ध था। ग़रीब पानसिंह ने कई जगह से ऋण लेकर भी गाँव वालों का सत्कार करना अपना कर्त्तव्य समझा था।

कथा आरम्भ हुई। पण्डित जैकिशन व्यास-गद्दी पर विराजमान हुए। बड़ी भक्ति की तन्मयता से उन्होंने कथा बाँची। कथा समाप्त हुई। आरती होने लगी। श्रोतागण बारी-बारी से आरती कर भेंट चढ़ाने लगे। शेरुवा लाटा भी आया हुआ था, अभी तक जैकिशन की उस पर नज़र नहीं पड़ी थी।

शेरुवा ने ज्योंही आरती के लिए थाली उठानी चाही। जैकिशन ने उसे डाँटकर कहा—"खबरदार! थाली में हाथ न लगा।"

हाथ जोड़ वह बोला—"क्यों-क्यों-क्यों म-महाराज ! स-सत्यनारायण क्या-क्या मेरे न-नहीं हैं ?"

"नहीं हैं तेरे। तू झूठा है।"

"क्या-क्या झूठा हूँ ?"

"तूने उस दिन विभास के किनारे मुझे हलाहल पीसकर पिला दिया।"

"भ-भगवान् की सौ-सौगन्ध, स-सत्यनारायण मु-मुझे कोढ़ी कर दें, सि-सिर्फ त-तमाखू था।"

"तूने कहा नहीं था उसमें बारूद भरा है।"

"न-नहीं तो आ-आप दियासलाई क्यों देते ?"

"तूने कहा था, पानसिंह को यह बेटा जंगल में पड़ा मिला था।"

"मैं-मैं-मैं लाटा आदमी, मे-मेरे ऐसे ही स-समझ में आया था।"

"कान पकड़, सत्यनारायण जी की आरती करने से कुछ नहीं

होता। सच्चाई रात-दिन व्यवहार में लाने की चीज़ है। पकड़ कान।"—गरजकर जैकिशन बोला।

शेरुवा ने भयभीत होकर दोनों कान पकड़े।

जैकिशन बोला—"कसम खा 'अब से कभी झूठ नहीं बोलूँगा।' नहीं तो इस आरती से तेरे होंठ जला देता हूँ।"

शेरुवा ने कसम खाई—"अ-अ-अब से क-कभी झूठ न-नहीं बो-बो-बोलूँगा। न-नहीं बोलूँगा, न-नहीं बोलूँगा।"

और उस समय केले के पत्तों की छाया में सत्यनारायण जी का चित्र इस सत्य और मिथ्या के रहस्य पर मन-ही-मन न-जाने क्या सोच रहा था?

उस रात को भागा को भी बड़ी जोर का ज्वर हो गया। भोजन के लिए उसकी जरा भी रुचि न थी, पर देवगिरि जी के बड़े आग्रह पर उसने कुछ गाय का दूध पी लिया।

बाबा जी उसके ओढ़ने-बिछाने का प्रबन्ध कर बोले—"तुम्हें रात को कोई डर तो न लगेगी?"

"भगवान् के इस मन्दिर में भी क्या किसी का डर है? पाप से नहीं डरी मैं। देवीरौ के श्मशान में रात को निडर होकर चली आई, भूत-प्रेतों से निःशंक होकर जंगली जानवरों का भी कोई भय न माना मैंने। पानी की उस गहराई में प्राणों का विसर्जन हाथ में लेकर कूद पड़ी मैं। भय की चरम सीमा लाँघकर अब मैं निर्भय हो चुकी हूँ।"—भागा कराहते हुए बोली।

देवगिरि जी उसके निकट जाते हुए कहने लगे—"हाथ बाहर निकालो।"

ओढ़े हुए कंबलों में अच्छी तरह अपने अंग-प्रत्यंग को ढकती हुई वह बोली—"नहीं, क्यों किसलिए?"

"देखूँगा तुम्हें कितना ज्वर है?"

"नहीं स्वामी जी, मैं आपसे कह चुकी हूँ, मैं चाण्डालिनी हूँ।

मेरा स्पर्श कर आप अपने को अपवित्र न करें।"

"अगर तुम्हारी हालत खराब हो गई, तब तो तुम कोई विरोध न कर सकोगी।"

"नहीं, कुछ नहीं होगा मुझे। दो-तीन दिन में ठीक हो जाऊँगी। ग्यारह दिन तक मुझे यहीं पड़ा रहने दीजिए। ग्यारहवें दिन मैं स्नान करूँगी, इस घर को लीपूँगी, ये सब कपड़े धोऊँगी। आप अपने नियम-कर्म छोड़कर कहाँ इस एक पतिता की चिंता में पड़ गये। जाइए कोई आपको ढूँढ़ते हुए यहाँ तक आ पहुँचेगा। यदि कहीं मुझे देख लेगा तो फिर मेरे लिए यहाँ रहना असम्भव हो जायगा।

"मैं साँकल बन्द कर आया हूँ, और इस भीतर के कमरे में बाहर से किसी की कल्पना भी नहीं पहुँच सकती। दृष्टि तो बहुत ही स्थूल वस्तु है। यह कड़वे तेल का दीपक जलता ही रहने देना। मैं बोतल में तेल और दियासलाई की डिबिया भी रख गया हूँ। लोटे में जल भी है।"

"सब आपकी कृपा है। मुझे कुछ नहीं चाहिए। आप विश्राम करें।"—भागा ने काँपती हुई वाणी से कहा। उसके दाँत कट-कटाने लगे।

"भागा, अभी-अभी तुम यह कैसे बोलने लगीं ?"

"मुझे बड़ी जोर का जाड़ा मालूम पड़ता है।"

देवगिरि जी ने अपनी ओढ़ी हुई पंखी कंधों पर से निकालकर हाथ में ली और बोले—"एक पंखी और ओढ़ा देता हूँ।"

अभी कुछ देर पहले भागा को किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं रही थी, पर ज्वर की विवशता से कुछ ही देर बाद बोली—"हाँ, ओढ़ा दीजिए।"

स्वामी जी ने उसे पंखी ओढ़ा दी और उसके उस बढ़ते हुए ज्वर को देखकर उन्होंने वहाँ से जाने का विचार छोड़ दिया। एक कोने में एक सिगड़ी में कुछ कोयले सुलगाकर ले आए थे, उसी के निकट

बैठ गये।

भागा का ज्वर रौद्र रूप रखने लगा। वह प्रलाप में बकने लगी—"कैसी अँधेरी रात! मैं समझी उस रात में कोई किसी को नहीं देखता। लेकिन वहाँ तो एक-एक पेड़ की हजार-हजार पत्तियों में आँखें निकल आईं, सबने मुझे देख लिया। बताओ क्या करूँ मैं?" फिर कुछ देर तक बक-बक छोड़कर कराहती रही वह।

देवगिरि जी पास ही बैठे-बैठे मन में कुछ विचार कर रहे थे। बड़ी दृढ़ता थी उनके मन में। कठिनाइयों के भविष्य को कभी भयानक रूप में नहीं देखते थे वे। जब विचार करते तब सरल और सम रूप में।

"प्यास, प्यास बड़ी भयानक प्यास!"—भागा बोल उठी।

देवगिरि जी ने सिगड़ी में एक तरफ एक गिलास कुछ दूध भरकर भी रोक रक्खा था। उस गिलास को उठाकर उन्होंने उसके तले पर की राख पोंछ दी और उसे भागा के पास ले जाकर बोले—"लो, थोड़ा-सा दूध पी लो।"

वह हँसते-हँसते कहने लगी—"मुझे तो प्यास लग रही है, और कौन हैं आप न-जाने क्या कह रहे हैं?"

"इससे प्यास बन्द हो जायगी।"

"प्यास मेरे प्राणों में लगी है। आप पानी लाये हैं। नहीं, कोई देख लेगा। और सबने देख लिया। हतभागिनी मैं कूद पड़ी देवीरौ के जल में वह प्राणों की प्यास बुझाने! लेकिन वह अगाध जल भी मेरी तृषा को शान्ति न दे सका।"

देवगिरि जी ने वह गिलास फिर सिगड़ी में ही रोप दिया। मन मे कहने लगे—"यह प्रलाप में ही न-जाने क्या देख रही है?"

फिर कुछ समय बीत गया। स्वामी जी का प्रत्येक काम समय से ही होता था और उसमें बहुत कम बाधाएँ व्यापती थीं। लेकिन यह भागा उनके दिन के श्रम और रात के विश्राम को डाँवाँडोल करने कहाँ

से आ गई। इस विचार की पहली छाया के पड़ते ही उन्होंने उसे स्थिर होने नहीं दिया।

भागा का प्रलाप फिर जाग उठा—"मैं इस दृश्य-जगत में डूब गई। देवगिरि जी कहते हैं, तुझे अन्धकार में कोई नहीं देख सकेगा, मैं उन्हें एक सन्त महात्मा समझकर उनकी बात का विश्वास कर लेती हूँ। क्योंकि मैं जीना चाहती हूँ, एक अज्ञात और अनाम बालक के लिए। स्वामी जी ने मुझे विश्वास दिलाया है कि वे उसे एक दिन ढूँढ़ कर मुझे दे देंगे।"

उसके प्रलाप में फिर एक यति पड़ी। देवगिरि जी की आँख फिर लगने लगी, वे दीवार के सहारे बैठे-बैठे ऊँघने लगे। उन्होंने उसे उस हालत में छोड़कर जाना उचित नहीं समझा।

फिर बड़बड़ाने लगी वह—"कौन ? कौन ? तुम कौन मेरे द्वार खटखटा रहे हो ? नहीं, मैं द्वार खोलकर इस भयानक अन्धकार में तुम्हारे साथ कहीं नहीं जा सकती। तुम क्यों मेरा हाथ खींचकर ले जा रहे हो ?" फिर कुछ देर के अन्तर से दृश्य बदला और वह फिर बोली—"खोलो द्वार ! क्यों नहीं खोलते ? मुझे नहीं पहचानते ? मैं तुम्हारी कोई नहीं ? आश्चर्य है तुमने मेरा मान-संभ्रम मिट्टी में मिला दिया और आज तुम्हें मुझे पहचानने में भी भय लगता है। और भी एक मेरे साथ है, उसे भी नहीं पहचानते ? नहीं ? तुम्हारे इन लोहे के द्वारों को मैं न खोल सकी और तुम्हारे इस वज्र के हृदय को मैं न पिघला सकी तो मुझे किसी का भय नहीं। हम दोनों एक गाँव से दूसरे गाँव तक तुम्हारे पाप का परदा फाड़ते चलेंगे।" इसके बाद वह रोने लगी—ऊँऽ ऊँऽ ऊँऽ कहाँ गया मेरा लाल ? कौन उठा ले गया ? मैं नहाने को गई थी, यहीं पर था, यहीं पर था। स्वामी जी ला दीजिए, वही मेरा एकमात्र सहारा है।"

देवगिरि ऊँघते हुए मन में सोचने लगे—'कहाँ से ला दूँ मैं इसके लाल को ? जंगली जानवर नहीं ले गया, फिर कौन ले गया ?'

भागा फिर नहीं बड़बड़ाई। उसे नींद आ गई। देवगिरि जी भी उसी तरह दीवाल के सहारे सो गये और स्वप्न-लोक में भागा के खोए हुए बालक को ढूँढ़ने लगे। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वे पानसिंह के यहाँ गये और उससे कहने लगे—"पानसिंह, अपने बच्चे को ला इधर।" "किस लिए?" उसने पूछा। "कुछ देखना है।" पानसिंह ने लाकर देवगिरि जी को जब अपना बच्चा दिखाया, तो वे कहने लगे—"देखो पानसिंह, यह तुम्हारा बच्चा नहीं है।" पानसिंह ने झिड़ककर पूछा—"फिर किसका है? आप साधु-महात्मा हैं, कभी झूठ नहीं बोलेंगे। आप जिसका बतादें, मैं उसके घर सौंप आऊँगा इसे। समझ लूँगा मेरा बच्चा फिर मर गया।" देवगिरि जी उसके इस प्रश्न का उत्तर सोचने लगे। जो सोचा, उसे प्रकट करते हुए काँप उठे, बोले हँसते हुए—"नहीं पानसिंह, मैं हँसी कर रहा था यह बच्चा तुम्हारा ही है।" पानसिंह ने एक थप्पड़ मार दिया उनके—"झूठ बोलते हो साधु होकर।" देवगिरि जी की नींद उचट गई। उन्होंने देखा भागा गहरी नींद में सो रही थी। वे भी फिर सो गये।

सुबह चार बजे उठ गये वे और अपने नित्य-कर्म में प्रवृत्त हो गये। जल्दी-जल्दी सब कामों से निवृत्त होकर उन्होंने दूध दुहा और उसे गरम कर भागा के पास ले गये। वह उठ बैठी थी, सूर्योदय होने में अभी कुछ देर थी।

"कैसी हो?"

"रात ज्वर होगया था लेकिन अब ठीक हूँ।

"नहीं, अभी तुम बीमार हो। लो, दूध पी लो।"

"नहीं, बिलकुल ठीक हूँ। स्नान करूँगी।"

"नहीं, कुछ न होगा आज।"

"बाहर जाकर मुँह-हाथ तो तब भी धोऊँगी।"

"जल्दी करो, फिर सूर्योदय हो जायगा। लोग आने-जाने लगेंगे।" देवगिरि ने कहा—"पहले मैं बाहर जाकर देख लेता हूँ।"

बाहर जाकर उन्होंने देखा, धनसिंह पोस्टमास्टर नदी-पार जंगल को जा रहा था। वे तुरन्त भीतर आए और कहने लगे—"आज गौशाला के पीछे जाकर मुँह-हाथ धो लो। बाहर मौका नहीं है। मैं एक बाल्टी में पानी लाकर रख देता हूँ।"

८

उस दिन फिर नहीं आया भागा को ज्वर। घर ही पर मुँह-हाथ धोकर विश्राम करने लगी और बोली—"मुझे बड़ी भूख लगी है।"

देवगिरि जी ने कहा—"रात तुम्हें बहुत ज्वर था, आधी रात तक तुम न जाने क्या-क्या बड़बड़ाती रहीं ?"

लज्जा से सिर नीचा कर वह मन में सोचने लगी—'न जाने क्या-क्या बक गई मैं।'

देवगिरि जी कहने लगे—"आत्मा के प्रकाश में साँस लो भागा, उसकी दिव्यता का विश्वास करो, निरन्तर के ध्यान से विश्वास प्राप्त हो जाता है। जिस दिन तुम्हें विश्वास मिल जायगा, सारे पाप धुल जावेंगे अपने-आप।"

भागा उसी नीची नज़र से बोली—"क्या-क्या कहा मैंने ?"

देवगिरि—"कुछ नहीं, फिर स्वप्न और सत्य का सामना ही कैसा ?"

भागा ने फिर आग्रह के साथ पूछा—"क्या कहा ?"

"कुछ नहीं, कह देने से पाप नष्ट हो जाता है।"

भागा रोते-रोते बोली—"पाप नष्ट हो जाता हो या नहीं, मैं नहीं जानती, पर एक दिन आपके चरणों में बैठकर सब कुछ कह देना चाहती हूँ। इससे मेरे हृदय का बोझ ज़रूर कम हो जायगा। आज कुछ नहीं कहूँगी। बता दीजिए आपने रात में क्या सुना ?"

भागा के आग्रह पर बाबा जी बोले—"बात ऐसी है, हमारे स्वप्न के जगत में भूत, वर्तमान और भविष्य ये तीनों काल एक ही साथ मिले हुए रहते हैं। उनके बीच में कोई दूरी नहीं रहती। तुमने जीवन में जो अनुभव किया, वे सब चित्र बनकर तुम्हारे मानस में समाए हुए हैं। उन्हीं चित्रों को तुम देखकर शब्दों में प्रकट कर रही थीं। किसी ने

तुम्हारे द्वार खटखटाये। वह तुम्हारा हाथ पकड़कर खींच ले गया...”

भागा ने आँचल में मुँह छिपाकर पूछा—“मैंने उसका नाम बताया ?”

“नहीं बताया, और मुझे जानने का कोई आग्रह भी नहीं।”

“फिर ?”

“फिर तुमने उसके द्वार खटखटाए। उसने नहीं खोले। उसका अत्याचार था, उसने द्वार नहीं खोले; तुम्हारी दुर्बलता थी, तुमने द्वार खोल दिये।”

“फिर क्या हुआ ?”

“शायद तुम अपने बच्चे को लेकर लौट आईं।”

“मेरा बच्चा ! मेरा बच्चा !”—भागा की गुप्त स्मृति जाग उठी। वह फिर रोती हुई बोली—“मेरा बच्चा ! मुझे पूरा विश्वास है, वह जीवित है। आप न ला देंगे उसे ?”

“मैं कहाँ से ढूँढ़कर लाऊँ ? लेकिन वह जहाँ भी होगा सुरक्षित ही होगा, तुम्हें माया से अलग रहना पड़ेगा, तभी तो देवीत्व प्राप्त होगा।”

भागा ने एक ठंडी साँस ली, फिर कहने लगी—“मुझे बड़ी भूख लगी है।”

“आज अभी दूध ही पियोगी। ज्वर नहीं आया आज तो कल करना भोजन।”—देवगिरि ने कहा।

“जैसी आज्ञा हो।”

देवगिरि उसके लिए वहाँ प्रचुर परिमाण में दूध रख गये। उन्होंने सिगड़ी में आग भी सुलगा दी।

“जब भूख लगे तब यह दूध पीती रहना।”—कहकर देवगिरि भागा को उस गौशाला में बन्द कर अपने कार्यक्रम में लग गये।

वे मन्दिर में भोग लगाकर जब बाहर आ रहे थे तो जैकिशन मिला। उसने उन्हें प्रणाम किया।

देवगिरि ने प्रत्युत्तर देकर कहा—"क्यों जैकिशन आज-कल तुम नियम-पूर्वक नहीं आते यहाँ क्या बात है ? स्वास्थ्य तो ठीक है ?"

जैकिशन ने अपना हाथ उनकी तरफ़ बढ़ाकर कहा—"नाड़ी देखिए, बताइए रोग कहाँ पर है। आप सभी का इलाज करते हैं, मेरा भी दुख दूर कर दीजिये न ?"

मन्दिर के बाहर चबूतरे पर बैठ गये दोनों। देवगिरि ने उसकी नाड़ी देखी, कहने लगे—"क्या हो गया ?"

"सिर में दर्द नहीं है, लेकिन कानों में कुछ ऐसी आवाज़ आती है, जिसे आँखों से नहीं पकड़ सकता।"

"नहीं समझा।"

"नाद का जागरण तो नहीं है यह ?"—एकाएक वह उठा और बोला—"फिर सुनाई दे रहा है।" जैकिशन मन्दिर के पीछे की तरफ़ को दौड़ गया।

देवगिरि मन्दिर के आँगन की ओर को गये। धूनी घेरकर कुछ लोग बैठे हुए थे। वे बोले—"क्या हो गया इसे, जैकिशन को ?"

"गाँजा और चरस महाराज—हर चीज़ मात्रा की ही ठीक होती है।"—एक ने कहा।

दूसरा गाँजे की चिलम दूसरे को देते हुए बोला—"हम तो महाराज क़ायदे से ही दम लगाते हैं। कम भी नहीं, ज्यादे भी नहीं।"

चिलम लेने वाला उसमें साफ़ी लपेटते हुए कहने लगा—"बात असल यह है महाराज, गाँजे-चरस किसी का कोई कसूर नहीं।" उसने खींचकर दम लगाई और चिलम में कली उठाकर बोला—"कसूर उसी का है, इसको चाहिए ख़ुराक। मैं गौमाता की सेवा करता हूँ, घी-दूध पीता हूँ, तब हजम होता है यह नशा। जैकिशन, घी-दूध के नाम में शून्य, तब यह नशा उसे न खा जावे तो क्या हमें खावेगा ? लीजिए महाराज एक दम लगा लीजिए, आपको क्या कमी है, ध्यान में मदद मिलेगी।"

देवगिरि जी घर की ओर जाने लगे। दौड़कर जैकिशन आ पहुँचा और उनका हाथ पकड़ लिया—"दवा दीजिए महाराज कुछ।"

"जैकिशन, दवा तुम्हारे ही हाथ में है। चरस पीना छोड़ दो, उसी ने तुम्हारे दिमाग़ को चूस लिया है।"—बाबा जी अपने निवास को चल दिये।

धूनी के पास बैठी हुई मंडली में से एक आवाज़ आई—"या कुछ घी-दूध का इंतजाम करो।"

"हाँ, बात ठीक कह रहे हो।"—जैकिशन हँसता हुआ उनके बीच में चला गया—"गौ-दान मिल तो जाता है कभी-कभी, पर जब कोई दूध देने वाली गाय देवे तब न। मंत्र गौ-दान का ही पढ़ता हूँ, लेकिन दान में ज्यादे-से-ज्यादे मिलते हैं वही पाँच रुपये।"—जैकिशन ने निराशा के साथ कहा।

"पाँच रुपये में बछिया खरीद सकते हो, उसकी सेवा करो तो उसके गाय बनने में क्या देर लगेगी?"—कोई बोला।

"अब आगे को यही करूँगा।"—जैकिशन ने उसके हाथ से चिलम ली और दम लगाकर बोला—"लेकिन भाई हर खेल का जमा-खर्च बराबर है प्रकृति में। गाय का घी खाकर जो बल मिलता है, वह उसका गोबर उठाने में खर्च नहीं हो जाता क्या? मैं अकेला आदमी पूजा-पाठ करूँ या गाय की रस्सी थामकर जाऊँ उसे करारे जंगल में।"

× × ×

मौक़ा निकालकर कुछ देर बाद देवगिरि फिर भागा को देख आए। फिर ज्वर नहीं आया उसे। दूसरे दिन बाबा जी ने उसे खाने को दे दिया।

देवगिरि जी को अब चिंता हुई भागा के निवास के लिए स्थान ढूँढ़ने की। गोशाला उपयुक्त स्थान नहीं था। वह एक तो दूर था, दूसरे वहाँ उसकी रक्षा असम्भव थी। वे उसे बिलकुल अपनी संरक्षकता के निकट रखना चाहते थे।

मन्दिर बहुत पुराना था, किसने उसका कब निर्माण किया यह अज्ञात इतिहास के गर्त्त में खोया हुआ था। कोई शिलालेख या ताम्र-पत्र प्राप्त न था। मन्दिर की मूर्त्तियों के प्रकार और शैली को देखकर जानकार लोग उसे गुप्त-काल की कारीगरी बताते थे। मूर्त्तियाँ अनुपात, सज्जा और मुद्राओं में सुदर्शना थीं, पर अराजकता की चोटों से प्रायः सभी मूर्त्तियाँ छिन्न-भिन्न थीं। रुहेलों ने इतनी दूर दुर्गम पर्वतों से आकर भी अपनी बर्बरता के चिह्न छोड़ दिये। कलाकारों को वर्षों की सिद्ध कला ने जिन पत्थरों में अलौकिक भावनाओं को मूर्त्त रूप दिया, जड़ता को उसे खण्डित करते क्या देर लगी होगी?

एक कोने में प्रधान मन्दिर था, उसके आगे दर्शनार्थियों के लिए विस्तृत प्रांगण था, दोनों ओर सुन्दर कारुकार्य निर्मित स्तम्भ थे, ऊपर छत थी और इधर-उधर रोशनदान खुले हुए थे, मन्दिर उस छत से दो-ढाई गुना ऊँचा था, उसके ऊपर कलश सुशोभित था। प्रांगण के अन्त में एक ओर नौबत-राग था और दूसरी तरफ भँडार, बीच में धूनी थी।

मन्दिर के एक तरफ़ एक छोटा भैरव जी का मन्दिर था और दूसरी ओर भोगादि तैयार करने के लिए और एक घर था। मन्दिर के बाहर फिर पत्थरों से पटा हुआ प्रांगण था। मन्दिर के चारों ओर दीवार थी। मन्दिर का मुख उत्तर दिशा को था। दो ओर दीवारों से रास्ता था। एक रास्ते के बगल में धर्मशाला थी, उसमें अतिथि-अभ्यागत और दूर-दूर के दर्शनार्थी तथा यज्ञ-अनुष्ठानकर्त्ता आकर ठहरते थे। दूसरे रास्ते की तरफ़ देवगिरि जी के रहने का मकान था—वह दो-तले का था। उसके एक तरफ़ गौशाला थी। इन सब मकानों के बाहर फिर एक दीवाल थी और तमाम भूमि के सम्भव विस्तार में देवगिरि जी ने अपने परिश्रम से फूल-फल और साग-सब्ज़ी की क्यारियाँ लगा रक्खी थीं। मन्दिर के पास ही कुछ ऊँचाई पर एक जल का स्रोत था। वह पानी मन्दिर में लाया गया था। उसी से वहाँ प्रायः वर्ष भर हरियाली थी। मन्दिर की चहारदीवारी के

भीतर, धर्मशाला के पास और देवगिरि जी के निवास इन तीन जगहों में उस जल की गूलें काटकर प्रपात बनाये गये थे। ग्रीष्म ऋतु में वह जल कुछ कम हो जाता था।

देवगिरि जी अकेले प्राणी, अपने मकान के निचले भूमि-तल में ही रहते थे। जब तक उनके स्त्री-पुत्र थे तब तक इधर के तल का उपयोग होता था। पिछले कई वर्षों से वहाँ उन्होंने नित्य के काम में न आने वाले छोटे-बड़े बरतनों का और अन्न आदि का गोदाम बना दिया था। दो कमरे ऊपर थे, दो नीचे।

अन्त में ऊपर के एक कमरे में उन्होंने भागा के रहने का प्रबन्ध किया, दोनों कमरों की चीजें एक ही में रख दीं, जो नहीं आईं उन्हें नीचे के कमरे में सँजो दिया। ऊपर के तल में जाने के लिए एक काठ की सीढ़ी भीतर से थी और दूसरी पत्थर की बाहर से। देवगिरि जी ने बाहर की सीढ़ी तुड़वा दी और उस पत्थर का उपयोग बाहर एक दीवाल बनाने में कर दिया।

मन्दिर के भीतर की दीवाल और बाहरी हाते की दीवाल में कुछ जगह छूटी थी, वहाँ पर एक दीवाल का भाग बनाने से उनके निवास की मन्दिर और धर्मशाला से एक स्वतन्त्र सत्ता हो जायगी, ऐसा विचार था।

९

देवगिरि जी उस दीवाल को मूर्त्तरूप देने में संलग्न हो गये। भागा को वहाँ आये ग्यारह दिन हो गये। फिर उसकी तबीयत खराब नहीं हुई। बाबा जी ने उसके भोजन और परिचर्या का अच्छा प्रबन्ध कर दिया था। इसके अतिरिक्त उसे जो मानसिक सहारा वहाँ मिला, उससे उसे स्वास्थ्य-लाभ करते कोई देर नहीं लगी।

वह सुबह तारों की छाया में उठ जाती। विभास नदी पर शौच तथा स्नान से निवृत्त हो गौशाला में लौट आती। देवगिरि जी भी दूर से उसकी चौकसी करते रहते। सूर्य और सूर्य-ताप के दर्शन के लिए भी उसे कठोर निषेध किया गया। उसके स्थान में उसके लिए अग्नि-सेवन का प्रबन्ध हुआ।

ग्यारहवें दिन भागा ने स्नान के अनन्तर तमाम कपड़े और ओढ़ना-बिछौना धोया, सारा कमरा लीपा। पंचगव्य छिड़ककर सब कुछ शुद्ध किया। फिर देवगिरि जी से बोली—"कुछ पूजा-पाठ और हवन-यज्ञ भी होना आवश्यक है।"

देवगिरि बोले—"हो जायगा, ऐसी जल्दी क्या है आज न सही एक दो दिन बाद सही, अभी तुम्हारा भेद मैंने यहाँ किसी को नहीं दिया है। शीघ्र ही तुम्हें उस अपने मकान में छिपाकर तुम्हारा पधारना प्रकट करूँगा। उसी उपलक्ष में पूजा-पाठ भी सार्थक हो जायगा।"

ऊपर का कमरा झाड़-बुहार लीप-पोतकर ठीक कर दिया गया था। एक खिड़की थी उसमें वह बन्द कर दी गई। बाहर की सीढ़ियों से जो प्रवेश-द्वार था उसमें, पत्थर की सीढ़ियाँ तोड़कर वह दरवाजा पत्थरों से भर दिया गया। नई दीवाल बनने से देवगिरि जी का मकान बिलकुल अलग हो गया, उसके आँगन में जाने के लिए मन्दिर से होकर ही एक रास्ता रहा गायों के बाहर आने-जाने को एक मार्ग

पीछे से था।

पण्डित ब्रह्मदत्त जी उस दिन से फिर कहीं घर से बाहर नहीं निकले। उनकी पत्नी ने गाँव में चारों ओर यह बात फैला दी थी कि भागा अपने मामा के साथ चली गई है। कुछ बिरादरी के लोगों ने मन में चाहे जो भी संशय किया हो, पर अधिक लोगों ने इस बात पर विश्वास कर लिया।

दस-बारह दिन तक जब भागा के मरने या जीने का कोई सबूत न मिला तो ब्रह्मदत्त जी की गृहिणी ने उनसे कहा—"इस तरह घर में बन्द रहने को आपने क्या कसूर किया है ? हम निर्दोष हैं। जिसका पाप था, वह अपने पाप के साथ गई। यह उसने अच्छा ही किया वह अपने कलंक में हमें नहीं सान गई।"

पण्डित जी ने पूछा—"तुम्हें इसका पूरा विश्वास है, वह गाँव छोड़कर चली गई ?"

"और क्या ? कहीं होती तो गाँव का एक-एक पत्थर बोल उठता। लोग तुम्हारे इस तरह घर में बन्द हो जाने से ही शक करने लगेंगे। फिर एक ही जगह बन्द रहने से तुम्हारा पुराना गठिया जाग उठा तो मुश्किल हो जायगी।"

पण्डित जी बाहर जाने को तैयार हो गये।

पण्डितानी बोली—"भागा के मामा को एक चिट्ठी लिख दो। उन्हें तो सब कुछ सच-सच बताना ही पड़ेगा। कार्ड मत लिखना, बन्द लिफाफा लिखना पड़ेगा। है कोई ?"

"लिफाफा तो नहीं है। चिट्ठी लिख ले जाता हूँ। मन्दिर तक जाऊँगा। वहाँ धनसिंह की दूकान से लिफाफा खरीदकर डाक के बम्बे में छोड़ आऊँगा।"

पण्डित जी पत्र लिखने बैठे। तमाम बातें लिख देने पर उन्होंने सोचा—'भागा मामा के यहाँ बनारस चली गई, इससे कुछ दिन के लिए बात टल गई, लेकिन हल न हुई। दो-चार महीने तक वह

वहाँ रहेगी फिर इसके बाद क्या होगा ?"

वे इस विचार की लहरों में थपेड़े खा ही रहे थे कि उनका बड़ा लड़का उनके पास आकर बोला—"पिता जी किसके लिए चिट्ठी लिख रहे हैं ?"

"तुम्हारे मामा के लिए।"—उन्होंने उत्तर में कहा।

बच्चे को दीदी की स्मृति जाग उठी। वह बोला—"उन्हें लिख दें कि वे अब शीघ्र ही दीदी को यहाँ भेज दें।"

"अभी तो सिर्फ एक ही हफ्ता हुआ है। सात-आठ दिन तो आने-जाने ही में लग जाते हैं।"

"तो एक महीने बाद आने को लिख दीजिए।"—बालक खेलने चला गया।

"अच्छा बोलो मत, ऐसा ही लिख दूँगा।"—पण्डित जी पत्र में लिखने लगे—"एक-दो महीने बाद तुम यहाँ को पत्र दे देना कि भागा बहुत बीमार है……" लिखते-लिखते उनकी कलम रुक गई और वे दुविधा में पड़ गये।

बालक फिर खेलता हुआ आ पहुँचा और पूछने लगा—"लिख दिया पिता जी ?"

"हाँ लिखता हूँ अभी। तुम चुप भी तो हो।"

"अच्छा मेरे सामने ही लिखिए, मैं चुपचाप खड़ा रहूँगा।"—बालक चुपचाप म्लान मुख लिये खड़ा रह गया।

पिता ने लिखा—"और फिर एक महीने बाद यह पत्र लिख देना कि भागा मर गई!" उनकी आँखें भर उठीं।

बच्चा बोला—"लिख दिया ?"

"हाँ, लिख दिया।"

"लेकिन आप रो क्यों रहे हैं ? क्या सचमुच में दीदी अब न आवेगी ?"—बच्चा भी रोने लगा।

पण्डित जी ने बालक को चुप कराया और कहने

लगे—"ऐसी बात नहीं कहते।"

बच्चा चुप होकर चला गया, पण्डित जी ने पत्र पूरा किया। जाकर धीरे-धीरे गृहिणी को सुनाया। गृहिणी ने उन्हें पास बुलाकर कहा—"ठीक है, अभी इसे डाक में छोड़ आओ।"

पण्डित जी ने कपड़े पहने और लाठी लेकर चल दिये मन्दिर को। पानसिंह के लड़के के नामकरण के दूसरे दिन की बात है। तल्ले देवद के पास उन्हें खेतों से लौटता हुआ पानसिंह मिला। दूर से ही उसने कहा—"पालागे पण्डित जी।"

ब्रह्मदत्त जी ने हाथ उठाकर उसे आशीर्वाद दिया। लाठी टेकते हुए।

"कल मेरे यहाँ सत्यनारायण जी की कथा में नहीं आये आप? आप ही से कथा बँचवाने की इच्छा थी मेरी! मैं गरीब आदमी. पैसा नहीं दे सकता था आपको तो फूल-पत्ती, प्रेम और पूजा तो थी मेरे पास।"—पानसिंह बोला।

पण्डित जी कमर में हाथ रखकर कराहते हुए बोले—"भाई पानसिंह मैं तो अमीर-गरीब के दो हिस्सों में संसार को नहीं बाँटता। तुम्हारे पुरोहित पण्डित जैकिशन बुरा मानेंगे इस सबब से नहीं आया, और फिर मेरा यह गठिया भी घर से पैर नहीं निकालने देता है। आज पूरे पन्द्रह दिन में घर से बाहर निकला हूँ, पूछ लो चाहे जिससे।"

"जैकिशन पण्डित तो आपे ही में नहीं रहते।"

"क्या हो गया उन्हें?"—पण्डित जी ने फिर हाथ से कमर दबा मुँह बिगाड़कर कहा—"ओ! हो! हो!"

"कमर मल दूँ आपकी? बैठ जाइए। अजी जैकिशन तिवाड़ी जी का दिमाग तो गाँजे ने घुमा दिया। पहले ही वे वैसे थे।"

"कथा किसने कराई?"

"उन्हीं को घेरा और क्या करता?"

"बड़ी खुशी की बात है लड़का तो ठीक है न अब तुम्हारा?"

"आपका आशीर्वाद है । चलिये मेरे घर, कल न सही आज चलिये।"

"अभी एक जरूरी चिट्ठी है, डाकखाने तक हो आता हूँ। फिर आऊँगा।"—कहकर ब्रह्मदत्त जी लाठी टेकते हुए चले।

पालसिंह उनकी पीठ पर बोला—"आप हैं पण्डित जी कि पोथी का इलाज चाहते हैं। मेरे अगर यह दर्द होता तो मैं दो डालियाँ बिच्छू की काटकर हर गाँठ में तड़ातड़ पीट देता!"

पण्डित जी ने गर्दन फिराकर कहा—"भाई उसे सहने को भी तो ताकत चाहिए। योगराज गुग्गुल से फ़ायदा हुआ था एक बार, लड़की बनारस गई है अपने मामा के यहाँ, वे वैद्य हैं। मँगाऊँगा, जब वह लौटेगी तब।"

पण्डित जी धनसिंह की दूकान में जा पहुँचे। उसके दूकान की दो दर थीं। एक में दूकान थी और एक में डाकखाना। उनके पीछे एक-एक कमरा और था। एक में कुछ अतिरिक्त सामान के भण्डार के साथ धनसिंह का रसोई-घर था और दूसरे में उसका शयन-गृह। इन दो कमरों के नीचे पीछे की तरफ़ दो गोठ थे। जिनमें एक में गाय और कभी-कभी भैंस रहती थी। एक में लकड़ी-घास का संग्रह था, एक तरफ़ पटवारी का घोड़ा बँधता था कभी।

सड़क की तरफ़ से मकान दो-मंजिला था और गोठ की तरफ़ से तिमंजिला। ऊपर की मंजिल में हलके के पटवारी जी रहते थे, जो अधिकतर इधर-उधर दौरे में रहते थे और वहाँ उनका हेड-क्वार्टर था।

धनसिंह दूकान में ही रहता था और उसके स्त्री-बच्चे और बूढ़ी माता गाँव में। जब पटवारी जी का मुकाम अपने हेड-क्वार्टर में होता तो वह कभी-कभी घर चला जाता था।

दूकान के बाहर उसके एक भट्ठी थी। उसमें अखण्ड अग्नि जलती रहती थी और उसके ऊपर धुएँ से घोर कृष्ण एक केतली निरन्तर जकड़ी हुई। उस केतली की काया के स्तर से उस पर जमी हुई कारिख की

मोटाई कहीं-कहीं पर तो जरूर दूनी होगी। एक लकड़ी के बिना द्वार क अल्मारी में उलटे किये हुए पाव-पाव भर के गिलास लाइन बाँधकर रक्खे रहते थे—तिल-भर आगे-पीछे नहीं—कवायद करते हुए सिपाहियों की तरह। नीचे के खाने में एक अल्यूमीनियम के भगौने में दूध ढका हुआ, एक बरतन में चीनी और एक चाय का बंडल सुशोभित रहता था।

सामने एक लकड़ी की लम्बी बेंच साधारण ग्राहकों के लिए रक्खी रहती थी और दो-तीन लोहे के सरिए और चादरों की कुर्सियाँ विशिष्ट व्यक्तियों के लिए। पण्डित जी को आता हुआ देखकर धनसिंह ने एक लोहे की कुर्सी आगे बढ़ाकर बड़ी भक्ति के साथ हाथ जोड़े—"पालागन पण्डित जी, बड़ी मुद्दत में आज आप इस तरफ आये? कहीं बाहर गये थे क्या?"

"यहीं था, तबीयत ठीक नहीं थी। एक लिफाफा दे दो और दवात-कलम भी। एक जरूरी चिट्ठी भेजनी है।"—पण्डित जी कुर्सी पर बैठ गये।

धनसिंह ने लिफाफा और दवात-कलम लाकर दे दिये। पण्डित जी ने पता लिखा, चिट्ठी बन्द की और अपने हाथ से लिफाफा बम्बे में छोड़ते हुए पूछा—"अभी डाक तो नहीं गई होगी न; भागते हुए आया हूँ।"

धनसिंह मुस्कराता हुआ चाय की वेदी पर बैठ गया। उसने भट्ठी में की लकड़ियाँ आगे को सरकाकर तेज की। केतली का ढक्कना उठाते हुए बोला—"पण्डित जी, डाक थैले में बन्द कर चुका हूँ। कुली आता ही होगा।"

ब्रह्मदत्त जी ने हाथ खींच लिया—"तब क्या होगा? चिट्ठी जरूरी थी।"

धनसिंह उठा, पण्डित जी के हाथ से चिट्ठी लेकर बोला—"टिकट पर जो मुहर ठोक दी मैंने उस पर मेरा कोई वश नहीं लेकिन लाख की मुहर को मैं फिर तोड़कर जोड़ सकता हूँ।"—उसने पण्डित जी की

चिट्ठी थैला खोकर उसमें डाल दी और फिर उसमें लाख की मुहर लगा दी ।

पण्डित जी खुश हो गये—"तुम्हारा भला हो ।"

धनसिंह फिर चाय बनाने लगा—"बैठिये पण्डित जी ।"

"नहीं धनसिंह मैं चाय नहीं पिऊँगा । तुम तकलीफ़ न करो ।"

"मैंने केतली भी साफ़ की है आज और यह गिलास भी साफ किया है अपने हाथ से । और क्या ख़ातिर करूँ मैं आपकी ? तमाखू आप पीते नहीं ।"

उसके आग्रह को टाल न सके पण्डित जी, बैठ गये । धनसिंह ने उन्हें चाय बनाकर दी । वे चाय पीने लगे ।

हाथ में एक थैले में पूजा की पोथी, धोती-अँगोछा और लोटा लिये आ पहुँचा जैकिशन, वह गा रहा था—

"मोहे मधुवन श्याम भुलाय गयो रे !
भुलाय गयोरे, हाँ भुलाय गयो रे,
मोहे मधुवन श्याम भुलाय गयो रे !"

आकर वह बैंच में बैठ गया और दोनों हाथों से उसका तख्ता बजाकर गाने लगा—

"मोहे मधुवन श्याम भुलाय गयो रे !

मूर्ख लोग ऐसे गाते हैं इसे—

मोहे मधुवन श्याम बुलाय गयो रे !"

फिर कुछ देर गाने के बाद कहने लगा—"भुलाने में जो बात है वह बुलाने में कहाँ ? भुलाने में बुलाना अपने-आप शामिल है । ब में भ नहीं है लेकिन भ में ब भी तो है । क्यों पण्डित जी ! नमस्कार आपने शायद मुझे पहचाना नहीं ।"

"नमस्कार तिवाड़ी जी ! क्यों नहीं पहचानूँगा ?—ब्रह्मदत्त जी ने कहा ।

"हम घुटने से नीचे की धोती भी पहनें तो लोग हमें छोटी धोत

वाला कहते हैं और आप कौपीन भी पहने रहें तो लम्बी धोतीवाले कहलाते हैं।"—जैकिशन बोला।

"तिवाड़ी जी, इन छोटी बातों से आपस में वैमनस्य फैलाने से कोई लाभ नहीं। हम सब एक हैं!"

"छोटे ही से तो बड़ा बड़ा है, अगर छोटा न रहे तो बड़ा कैसे हो जायगा?"—जैकिशन कहने लगा।

धनसिंह बोला—"क्या ही सुन्दर गीत गा रहे थे आप!"

जैकिशन को फिर गीत याद आ गया। वह बोला—"अभी पूरा ही कहाँ हुआ है? लेकिन यह भुला देने का गीत पूरा ही कब होता है?" वह फिर गाने लगा—

"सोती थी मैं अपने भवन में,
सोती को आन जगाय गयो रे!
मोहे मधुवन श्याम भुलाय गयो रे!"

वह फिर कहने लगा—"लेकिन जब मैं अपने भवन में सोती थी, तो फिर भुलाने और सोने के बीच में बुलाना क्यों नहीं हो सकता? क्यों पण्डित जी, आप श्रेष्ठ कुलीन ब्राह्मण हैं, अर्थ बताइये।"

ब्रह्मदत्त जी ने बात टालकर कहा—"तिवाड़ी जी, कितना सुन्दर स्वर है तुम्हारा! तबीयत कैसी है अब?"

"मेरी तबीयत को क्या हुआ है? यह मेरे दुश्मनों की उड़ाई हुई खबर है। अगर आप अच्छे आदमी हैं तो इन बातों में विश्वास न करें। नहीं तो ठीक न होगा।"—वह बोला।

"कुछ बादाम घोटकर मिश्री के शरबत में पीते तो ठीक था।"

"हा! हा! श्याम धतूरा पिलाया तो था उस चोट्टे शेरुवा ने। लेकिन पण्डित जी, जो सोती थी अपने भवन में वह सोती ही थी। मैंने कुछ नहीं किया, मैंने किसी को नहीं जगाया। मैंने गीत जरूर गाया। वह गीत क्या मेरे वश का था, प्रकृति ने उस आवाज़ को मेरे प्राणों में से खींचकर मेरे होठों पर नचा दिया। मैंने कुछ नहीं गाया—

यह छिद्रों से भरी हुई मेरी देह में साँस के आने-जाने से कुछ शब्द होता है, क्या वही गीत है ? मैंने किसी को नहीं भुलाया पण्डित जी, मैं ही तो भूला और भटक गया हूँ।"—कहता हुआ चला गया वह।

धन्नसिंह ने चाय बनाते हुए कहा—"लो, चाय तो पी जाओ। तुम्हारे ही लिए बनाई है।"

"लौटते समय आऊँगा।"—जैकिशन मन्दिर की तरफ़ चला गया।

"यह बड़ा अच्छा और होशियार आदमी था, क्या किया जाय, भगवान् की लीला ! बिलकुल होश में नहीं है।"

"कभी-कभी ऊटपटाँग ऐसी बातें करते हैं। वैसे संध्या-पूजा, नियम-धर्म, व्यवहार-बर्ताव में ठीक ही हैं।"

"अच्छा, मैं मन्दिर में दर्शन कर आता हूँ।"—कहकर ब्रह्मदत्त जी भी मन्दिर की ओर चले गये।

मन्दिर जाकर उन्होंने दर्शन किये। मन्दिर में खड़े हो दोनों हाथ जोड़कर बड़ी भक्ति से देवाधिदेव की स्तुति की, फिर धूनी के पास आए। कुछ भक्तों से पूछा—"देवगिरि जी कहाँ हैं ?"

"अपने मकान में हैं, काम लगा है वहाँ।"—एक ने प्रत्युत्तर में कहा।

ब्रह्मदत्त जी बाहर जाकर देवगिरि के मकान की तरफ़ गये तो देखा, वहाँ पर एक ऊँची दीवाल हवा में खड़ी हो गई थी। वे लौटकर फिर मन्दिर में आए। एक दूसरे मनुष्य ने उनकी निराशा को पढ़कर कहा—"इधर से जाइए, उधर का रास्ता बन्द कर दिया गया है।"

पण्डित जी मन्दिर के रास्ते से बाबा जी के निवास में पहुँचे। वे आँगन में खड़े होकर मकान और शाला के बीच में भी एक दीवाल बनवा रहे थे। अभिवादन के अनन्तर ब्रह्मदत्त जी ने पूछा—"स्वामी जी, क्या बन रहा है ?"

"कुछ नहीं पण्डित जी, दीवाल बनवा रहा हूँ।"

"दण्ड, कमण्डलु, और कौपीन इनकी सुरक्षा के लिए क्या ?"

हँसकर बोले देवगिरि जी—"नहीं, अपनी रक्षा तो कभी की ही नहीं। एक माता जी आने वाली हैं कैलास से।"

"कौन माता जी ?"

"नाम मुझे नहीं मालूम है, माता जी के नाम से ही विख्यात हैं वे। 'माता जी' क्या यह नाम नहीं हो सकता। मेरे गुरु-भाई ने लिखा है वे यहाँ आकर कुछ दिन निवास करेंगी। असूर्यपश्या हैं वे—सूर्य और धूप दोनों को नहीं देख रही हैं। पिछले एक-दो वर्षों से। पूरे बारह वर्ष तक का यह व्रत है। इसके सिवा मौनी भी हैं और स्त्री-पुरुषों का मुँह भी नहीं देखतीं।"

"बड़ा अद्भुत व्रत है यह। सूर्य तो बड़े ही प्रकट देवता हैं, उनसे छिपकर रहना यह कैसी तपस्या है ?"

"अभाव में उस वस्तु की निरन्तर याद बनी रहती है। इसीलिए मन के भीतर ज्योति जगाने के लिए ऐसा किया गया है।"

"जाड़ों में तो बड़ी मुश्किल पड़ती होगी, आग तापती हैं या नहीं ?"

"तापती हैं।"

"बाहर बिलकुल नहीं निकलतीं ?"

"निकलती है, पर घोर अँधेरे में। दिन भर अँधेरे में ही रहती है। उस कमरे में रहेंगी। देखिए, तमाम खिड़कियाँ भर दी गई हैं। गोबर और मिट्टी से तमाम छेद बन्द कर दिये गये हैं कि सूर्य की कोई किरण भीतर न जा सके।" देवगिरि जी ने कहा—"विवशता में कभी आँखों में पट्टी भी बाँधे रहती हैं।"

"मन की साधना के ये तरह-तरह के उपाय हैं। मौनी भी हैं। पढ़ी-लिखी हैं ?"—पण्डित जी ने पूछा।

"होंगी क्यों नहीं ?"

"तो लिखकर अपनी इच्छा प्रकट करती होंगी ?"

"लिखना भी तो एक तरह का बोलना ही हुआ। मन अछूता कहाँ रहा? आवाज से न हुआ अक्षर से तो सन गया वह पार्थिवता में। भगवान् जाने क्या करती हैं, आवें तो पता चले।"

गौशाला के पास ये बातें हो रही थीं। भागा पिता की आवाज सुनकर बाहर के कमरे में आकर उन दोनों की बातें सुन रही थी। उस कैलास से आनेवाली एक अज्ञात माता के रूप में अपना अवतरण पाकर, एक अनोखी भावना उसके मन में हिलोर लेने लगी। जब उसने सुना 'माता लिखकर अपनी इच्छा प्रकट करती होंगी' तब उसने निश्चय किया—'इस भयानक संसार में इसके साथ आँख और कान दोनों के संसर्ग-विच्छेद कर दूँगी। मैं आँखों में पट्टी बाँध लूँगी और कानों में कपड़ा ठूँस दूँगी।"

देवगिरि ने पूछा—"आपका शरीर कैसा है? बाल-बच्चे सब ठीक ही होंगे।"

भागा का हृदय उनके उत्तर के लिए त्वरित गति से स्पंदित हो उठा। इसी समय नहा-धोकर जैकिशन भी वहाँ आ उनकी बात सुनने लगा।

ब्रह्मदत्त जी बोले—"ठीक ही हूँ। भागा बनारस चली गई अपने मामा के यहाँ।"

देवगिरि ने उस तिलक-त्रिपुण्डधारी ब्राह्मण को देखा। मन-ही-मन उनकी उस सच्चाई पर विचार किया एक क्षण, फिर बोले—"लेकिन अब तो वहाँ गरम हो जायगा। जाड़ों में भेजते।"

पण्डित जी ने जवाब दिया—"उसके मामा वहाँ वैद्य हैं। इलाज के लिए भेजा है उसे। पिछले दो-तीन महीने से वह बीमार ही चली आ रही थी।"

"क्या हो गया उसे?"

"खाना हजम नहीं होता था। जो दो-चार कौर खाती थी, सब कै कर देती थी। पेट फूल गया था।"—पण्डित जी ने कहा।

अचानक गोशाला के पीछे से दीवाल फाँदकर फिर नदी क चला गया ज़ोर-ज़ोर से मंत्रोच्चार करता हुआ जैकिशन। पण्डित जी उसे देखकर बोले—"इस बिचारे की क्या दशा हो गई..."

"कर्म की गति!"

जैकिशन ने तुरन्त ही फिर आकर स्वामी जी को हाथ जोड़े और पण्डित जी से भी नमस्कार के बाद कहा—"अँगोछा भूल आया था नदी में। आज बड़े दिनों में दिखाई दिये।"

ब्रह्मदत्त जी को वह इस समय बिलकुल एक दूसरा ही मनुष्य जान पड़ा। वाणी का स्वर, वाक्य, चेष्टा और मुखाकृति सब मामूली तौर पर ठीक ही ज्ञात हुए। जब जैकिशन को धनसिंह के दूकान पर की भेंट याद न रही तो उन्होंने भी भुलाकर पूछा—"क्यों तबीअत कैसी है तुम्हारी?"

"ठीक है नहा-धोकर आया हूँ। पण्डित जी, बदमाशों ने मुझे संखिया पीसकर खिला दिया। दिमाग़ में गरमी घुस गई है। कुछ आवाज़ें सुनाई देती हैं। लोग मुझे पागल बताते हैं, बतावें।"

भागा ने भीतर से जैकिशन की आवाज़ सुनी। वह सहमकर पीछे को हटी, फिर आगे बढ़ गई। इच्छा हुई एक बार दरवाज़े के छिद्रों से देख लूँ उसे क्या हो गया! मन में बोली—"नहीं, इसका मुँह न देखूँगी। लेकिन इसकी वाणी में एक कातरता, एक पीड़ा और एक पश्चात्ताप बोलने लगा है। शायद कुछ बीमार हो गया। होने दो। किसी का उत्पीड़न अवश्य ही लौटकर अपनी पीड़ा बन जाता है।"

जैकिशन संध्या-पूजा करने चला गया मन्दिर में। वह सोचने लगा—"चलो, ठीक ही हुआ, वह मामा के यहाँ चली गई। लेकिन उसका बच्चा? वह ज़रूर उसे देवीरो के जल में समाधि दे गई तभी तो वह भूत बनकर मेरे पीछे लगा है। नहीं भूत-प्रेत कुछ नहीं है।" उसने निश्चय किया। और वह जाकर धूनी के पास गया। गीली धोती उसने मन्दिर के आँगन में बँधे हुए एक तार पर लटका दी।

पण्डित जी जब स्वामी जी से विदा होकर घर को जाने लगे थे तो जैकिशन के हाथ में चरस की चिलम थी। उन्होंने जैकिशन को अपने पास बुलाया।

एक दम और खींचकर जैकिशन उनके पास गया। पण्डित जी बोले—"जैकिशन तिवाड़ी जी, यह ठीक नहीं है। तुम कहते थे दिमाग़ में गरमी भर गई है। इससे तो और भी ख़राबी पहुँचेगी।"

"पण्डित जी महाराज, यह सब मुझे मालूम है। पर करूँ क्या पुरानी आदत से लाचार हूँ। इससे ज़रा पूजा में ध्यान लगता है। शेरुवा लाटे ने मुझे काला संखिया पीसकर पिला दिया, ख़राबी उससे पहुँची। उसका भी क्या कसूर पण्डित जी, हम एक ऐसे चक्कर में घूम रहे हैं—जहाँ जन्म-जन्म की हिंसा-प्रतिहिंसा अपना-अपना खेल खेल रही हैं। सब नक़्शे के मुताबिक़ ही हो रहा है।"

पण्डित जी फिर उसे बहकता देखकर चल दिये।

१०

रात को देवगिरि जी संध्या की पूजा-आरती कर भागा के लिए भोजन लेकर गौशाला में पहुँचे और कहने लगे—"भागा, उस मकान में सारा प्रबन्ध ठीक हो गया है, मेरी समझ में आज रात को तुम उसमें चली जाओ और मैं तुम्हारे यहाँ आने की घोषणा कर दूँ।"

कुछ शंकित होकर वह बोली—"लोग पूछेंगे किसके साथ आई?"

"कह दूँगा, गुरु-भाई के साथ आई थीं, वे सुबह उठकर बदरी-नाथ जी को चले गये।"

"मैं अभी शुद्ध नहीं हुई हुँ।"

"दिन पूरे हो जाने से ही हमारी शुद्धि हो जाती है। फिर तुम रोज ही तो नहाती हो। तुम्हारा मतलब कुछ मंत्र-पूजा, हवन-यज्ञ से है तो उसका भी प्रबन्ध किया गया है। कल को सत्यनारायण जी की कृपा करा दूँगा। पास-पड़ोस के गाँवों से कुछ ब्राह्मणों को बुलाकर खिला दिया जायगा।"

भागा को सम्मत कर देवगिरि जी मन्दिर में पहुँचे। वहाँ कीर्त्तनकारों का जमघट कीर्त्तन में मस्त था।

देवगिरि जी ने जाकर कहा—"भक्त लोगो, बस अब समाप्त करो।

जैकिशन बोला—"स्वामी जी, जहाँ ज़रा रँग जमता है कि आप बड़ी भारी चोट चलाकर सब चौपट कर देते हैं।"

"कल रात भर करना जागरण।"

"आज क्यों नहीं?"

"बात ऐसी है मुझे सुबह तीन बजे उठना है। कैलास से माता जी आने वाली हैं।"

'कौन माता जी?"—एक ने पूछा

दूसरे ने पूछा—"तीन बजे रात आने को ऐसी क्या पड़ी है ?"

जैकिशन चिढ़ा बैठा था, कहने लगा—"दिन में क्या दिखाई नहीं देता उन्हें ?"

देवगिरि बोले—"असूर्यंपश्या हैं वे, दिन में बाहर नहीं निकलतीं।"

"असूर्यंपश्या क्या हुआ ?"—एक अनजान ने पूछा।

"जो सूर्य को नहीं देखतीं, उन्हें कहते हैं।"—बाबा जी ने कहा।

"बहुत अच्छा, बन्द कर दो।" जैकिशन ने आज्ञा दी—"हारमोनियम की फूँक निकाल दो और ढोलक के छल्ले ढीले कर दो। और जिसके गाने की हौस पूरी नहीं हुई हो, वह घर तक गाते-गाते ही चला जाय। इससे जंगली जानवर भी भाग जायँगे और किसी तरह की डर भी नहीं सतायगा।"

वैसा ही किया गया। साथियों में से एक बोला—"तिवाड़ी जी अब एक चिलम जाते वखत की हो जाय।"

जैकिशन बोला—"एक छोटा-सा टुकड़ा है मेरे पास। वह सुबह के लिए रक्खा है भाई, नहीं तो सूर्योदय ही कैसे होगा ? कैसे जाऊँगा जंगल, कैसे आऊँगा और कैसे होगी पूजा ?"

देवगिरि ने जैकिशन को एक तरफ बुलाकर कहा—"कल को कुछ पूजा-पाठ करना है, सूर्योदय के समय आ जाना यहाँ।"

"जो आज्ञा स्वामी जी !"—जैकिशन बोला।

"सत्यनारायण जी की कथा भी होगी। पास-पड़ौस के सब गाँवों में न्यौता भी भेजना है। आज रात को न भी हो सके तो कल सुबह तो हो जाना चाहिये।"

कीर्त्तनकारों में से एक बोला—"अभी आठ ही तो बजे हैं, हम अभी न्यौता पहुँचा देंगे। बहुत से गाँवों के प्रतिनिधि तो हम में हैं ही।"

"विभास-नदी के पार के गाँवों में भी जायगा न्यौता ?"—एक

ने पूछा।

"नहीं, सिर्फ इस पार के ही गाँवों में। जो अपनी खुशी से आ जाय उसका स्वागत है। अधिक लोगों का प्रबन्ध भी तो नहीं हो सकता।"—देवगिरि बोले।

"देवगिरि स्वामी की जय!"—जैकिशन बोला।

"देखो, दिमाग़ को क़ाबू में रखना होगा तुम्हें। यह सब गड़बड़ नहीं चलेगी, चारों ओर के लोग आवेंगे। एक भी बात असंयत न करना वरना नहीं तो सारी घाटी में बदनाम हो जाओगे।"—देवगिरि ने कहा।

"बात ऐसी है स्वामी जी, चरस पीता हूँ गाना गाने के लिए, गीत गाता हूँ कुछ अपना दुख भुलाने को, कुछ आपके मन्दिर में रौनक करने को और बाकी भगवान् के रिझाने को!"—जैकिशन ने अपनी सफ़ाई दी।"

"इस वाद-विवाद के लिए अभी समय नहीं है। इस समय आप लोग जाकर सब जगह न्यौता दे दें।"—देवगिरि ने कहा।

सब लोगों के जाने पर स्वामी जी ने जो चीजें रह गई थीं उनको यथास्थान रक्खा और तमाम द्वारों पर साँकल और ताले दे दिये। वे फिर भागा के पास आए। उन्होंने बिना द्वार खोले ही कहा—"अब विश्राम करो। मैं तीन-चार बजे के बीच में तुम्हें जगाऊंगा और तब तुम्हारा नये आश्रम में निवास होगा।"

गौशाला के बाहर एक छप्पर छाया हुआ था। देवगिरि जी भागा के आने के बाद से रात को वहीं सोते थे कि उसका मन घबराये नहीं।

भागा ने भीतर से आवाज़ दी—"आपकी आज्ञा शिरोधार्य है गुरुदेव!"

घास के ऊपर अपना कंबल बिछाते हुए देवगिरि बोले—"कल तुम इस शब्द का उपयोग न करने पाओगी।"

"क्यों?"

"यही शब्द क्या तमाम शब्दों के द्वार पर ताला लगाना पड़ेगा। तुम्हें मौन-साधना करनी है।"

"हाँ गुरुदेव ! इच्छा होती है, केवल इसी शब्द को रटते-रटते रात बिताऊँ, रात ही नहीं यह जन्म समाप्त कर दूँ, तब भी क्या आपके ऋण से मुक्त हो सकूँगी।"

"बिना ध्वनि के जो शब्द मन में जगाया जाता है, उसका अधिक शक्ति होती है।"

"सारे जगत पर अन्धकार डाल दूँगी, किसी से भी नहीं बोलूँगी। लेकिन गुरुदेव आपको देखने का अधिकार मिले, आपसे बातें करने की आज्ञा तो प्राप्त रहनी चाहिए।"

"भागा, एक जगत कल्पना का है। इन अभावों से उसकी पूर्ति होगी, वह जाग उठेगा। तब तुम्हें ज्ञात होगा बाहर कुछ नहीं सब कुछ भीतर ही है। इसलिए जो कहा जाता है उस पर विश्वास करो। मुझे अभी तक वह विश्वास नहीं मिला। सो जाओ, तुम्हें वह विश्वास प्राप्त हो।"

"सो गई गुरुदेव !"—भागा ने कहा। वह अपनी भूमि शय्या पर चली गई, पर उसकी आँखों में नींद कहाँ ? समाज और प्रिय-परिजनों से जो तिरस्कार उसने पाया था, उससे उसे पानी में डूब जाने का साहस हुआ था। वह कूद भी पड़ी थी। तब से उसकी मानसिकता में एक अद्भुत परिवर्त्तन हो गया था। वह सहज ही अन्धकार और मौन के अगाध सागर में डूब जाने को प्रस्तुत हो गई। उसे छिपने के लिए उससे अधिक सुरक्षित दूसरा स्थान भी तो न था। वह जानती थी, उसकी ज़रा-सी असावधानी से स्वामी जी की कीर्त्ति में बड़ा भारी धब्बा लग जायेगा। रात भर वह इसी दुविधा में रही।

लेकिन देवगिरि जी के मन में कोई संशय और कोई दुविधा नहीं थी। वे अच्छी तरह जान रहे थे कि वह एक विशुद्ध परोपकार की बात थी एक गिरे हुए को पाप-पंक से ऊपर उठा देने का सहारा था

इसलिए दिन भर के श्रम से श्रांत देवगिरि जी पड़ते ही सो गये। स्वप्न के जगत् में दूसरे दिन के कार्यक्रम का चित्रीकरण अवश्य करते रहे।

रात ही में उठ बैठे वे। समय का अनुमान लगाया हवा की गति और तारों की स्थिति से—लगभग तीन बजे होंगे। कंबल लपेटकर आग जलाई और भागा को जगाया। दोनों विभास के निकटतम घाट को चले। देवगिरि ने एक पोटली उठाकर साथ ले ली।

भागा बोली—"गुरुदेव, प्रकाश के जगत् से तो बाहर निकल गई हूँ इतने दिनों से, अभी बोलने की आज्ञा तो है न ?"

"हाँ, अभी बोल सकती हो, जब तक नये आश्रम में तुम्हारा प्रवेश न हो जाय।"

"इसलिए फाँसी के तख्ते पर चढ़े हुए प्राणों की अन्तिम इच्छा कहने को मुझे ढूँढ़नी ही चाहिए। फिर घोर अन्धकार और नीरवता !"

"नहीं भागा, ऐसा क्यों सोचती हो ? एक दिव्य-ज्योति बल उठेगी प्राणों में और दैवी संगीत झंकृत हो उठेगा मानस में। कहो, निर्भय हो कर कहो, क्या कहती हो ?"

"गुरुदेव, आपके लिए काँटा होकर न जी सकूँगी। मैं इस मन्दिर में। मुझे जाने दीजिए।"

बड़ी शान्तिपूर्वक स्वामी जी ने पूछा—"क्या इस अन्धकार और नीरवता से घबरा उठी हो ?"

"नहीं, इन दोनों को तो चाहती हूँ।"

"फिर क्या भय है ?"

"कोई ढूँढ़ लेगा मुझे और इस भेद को खोल देगा।"

देवगिरि ने उसे साहस दिलाया—"अगर तुम मौन को अक्षुण्ण रख सकीं और सूर्य की ओट में अखण्डता से रह सकीं तो बाहर की रक्षा के लिए मैंने पूरे प्रबन्ध कर लिये हैं।"

"सुबह शौच-स्नान के लिए यह जो बाहर आना पड़ता है, इस समय किसी ने देख लिया तो···?"

"कौन उठता है इस समय ? फिर तुम्हें कोई नहीं पहचान सकेगा

एक तो रात का अन्धकार, और दूसरे जब तुम मौन-पालन करोगी तो आवाज की समझ से दूर चली जाओगी। रह गई तुम्हारी आकृति-प्रकृति, वह सब कुछ अभी ठीक करता हूँ। तुम देखोगी, भागा समाप्त होकर देवीत्व की ओर जा रही है।"—कहते हुए स्वामी जी ने हाथ का भार विभास के किनारे के एक विशाल शिलाखण्ड पर रख दिया।

दोनों जंगल से लौट आए। हाथ-मुँह धोकर देवगिरि ने एक कैंची निकाली और भागा के सिर के तमाम बाल काट दिये, इसके बाद वे बोले—"भागा, अब तुम्हारे साहस की परीक्षा है। साहस है तुम्हारे पास ?"

भागा चुप रही।

"भागा आधी मर गई। अब तुम्हें देखना कोई पहचान सकेगा क्या ?"

"नहीं महाराज, इसके लिए क्या साहस चाहिए ?"

"परीक्षा है तुम कितना कष्ट सह सकती हो ?"

"जो जीवन का मोह छोड़कर पानी में डूब जाय, वह क्या कम कष्ट सहना हुआ ?"

"यही मैं भी सोचता हूँ। भगवान् ने मुझे तुम्हारे दोनों कान चीर देने की आज्ञा दी है—तुम तैयार हो ? सुख-दुःख एक कल्पना है। अगर तुम्हारे पीड़ा होती है तो न सही।"

"नहीं गुरुदेव, कोई पीड़ा न होगी। आप भगवान् की आज्ञा का अवश्य पालन करें।"

देवगिरि ने तेज छुरा निकाला और भागा के दोनों कान चीर दिये एक ही पल में। रक्त की धारा निकल पड़ी। भागा ने एक भी आह नहीं भरी। देवगिरि ने उसकी पीठ ठोककर कहा—"तुम निःसंदेह इस नये मार्ग पर अग्रसर होओगी। उन्होंने एक पुड़िया से एक चूर्ण निकाला और दोनों कानों के घावों पर लगा दिया। रक्त का बहना उसी समय बन्द हो गया।

इसके बाद देवगिरि ने उसे स्नान करने की आज्ञा दी। जब स्नान कर आई तब स्वामी ने उसे एक गेरुवे रंग में रंगी हुई धोती दी और एक वैसी ही चादर। भागा उन वस्त्रों को पहनने लगी। देवगिरि ने उसके साथ घर से लाया हुआ जो लहँगा, चोली थी उसे उसकी पुरानी चादर में बाँधा और उसी में उसके सिर के कटे हुए बाल भी रख दिये। उसे भारी करने को उन्होंने उसमें कुछ पत्थर भी रख दिये और उसे जल्दी से जाकर देवीरौ में डुबाकर वापस आए और बोले—"अब आज सचमुच में भागा देवीरौ में डूब गई और इस माता के रूप मे उसका जन्म हुआ है।"

देवगिरि ने भी स्नान किया और दोनों मन्दिर को चले। नये आश्रम में दीपक जला आए स्वामी जी। फिर मन्दिर के भीतर शिव की मूर्त्ति के सामने उसे खड़ा करके कहा—"तुम्हें कुछ कहना है तो कह लो फिर किसी संकेत या लेख से तुम कुछ कह न सकोगी।"

"मुझे कुछ कहना नहीं है।"

देवगिरि ने कुछ मंत्र पढ़कर माता के तिलक लगाया, फिर उसके ऊपर पुष्पाक्षत की वर्षा की। फिर उन्होंने उसके दोनों कानों में मोटे-मोटे शंख के छल्ले पहनाए। इसके बाद उन्होंने उसकी आरती की और उसके चरणों में माथा नवाकर कहा—"माता की जय हो!"—माता सहमी।

देवगिरि ने कहा—"अब तुम्हारे ध्वनि के कपाट बन्द हो गये। तुम कुछ न कह सकोगी माता।"—देवगिरि ने शंख-ध्वनि की।

माता चुप रह गई।

देवगिरि बोले—"चलो माता, अब तुम आगे-आगे चलो। अपने नवीन आश्रम में।"

माता आगे-आगे चलीं। देवगिरि शंख बजाते हुए माता की जय पुकारते हुए उसे उस नये आश्रम में प्रतिष्ठित कर चले आए।

माता ने उस अपने नये निवास पर दृष्टि की। एक कोने में एक

क्षीण प्रकाश में मिट्टी का दीपक जल रहा था। कमरे की दोनों खिड़कियाँ और एक बाहर का द्वार लीप-पोतकर बन्द कर दिये गये थे। भूमि पर एक चटाई और उसके ऊपर एक कंबल बिछाने को और एक ओढ़ने को रक्खा था। एक ओर एक घड़ा और लोटा रक्खा था। एक तरफ एक गिलास और थाली थी। माता ने अपने उस निवास को प्रणाम किया और जाकर उस कंबल पर बैठ गई।

देवगिरि ने माता के द्वार पर ताला लगाया फिर नीचे अपने कमरे में और मन्दिर में पूजा-पाठ के लिए चले गये।

सबसे पहले उस दिन मन्दिर में आने वालों में था धनसिंह पोस्ट मास्टर। रात ही में उसने मन्दिर में ज़ोर-शोर से शंख बजता सुनकर समझा कि आज ज़रूर कोई विशेष पर्व है। रात को ही उसके पास सत्यनारायण जी की कथा का न्यौता तो पहुँच ही चुका था। कैलास से आने वाली माता जी की विशेषता सुनकर भी उसका उत्साह परि-वर्द्धित हो गया था। पास-पड़ौस के दस-बीस गाँवों से लोगों की भीड़ जमा होगी तो कुछ दूकानदारी हो जायगी।

रोज़ के समय से कुछ पहले ही उठ गया धनसिंह। साफ़ कपड़े और धोती उठाकर चला विभास नदी को। जंगल से लौटकर उसने बालू से रगड़-रगड़कर अपना बेपेंदे का पीतल का लोटा खूब चमकाया। आपने भी नहा-धोकर साफ़ कपड़े पहने और लोटे में जल भर मन्दिर को गया।

देवगिरि जी उस समय संध्या-पूजा समाप्त कर मन्दिर की साज-सज्जा में व्यस्त थे। सूर्योदय हो रहा था। धनसिंह ने नदी के आस-पास से कुछ रसौंत के फूल तोड़े और बड़े भक्ति-भाव से पानी का लोटा लिये मन्दिर के द्वार पर उपस्थित होकर उसने देवता को बाहर ही से प्रणाम किया। फिर मन्दिर के भीतर घुसा, स्वामी जी को नमन किया और महादेव जी के सिर पर सारा लोटा खाली कर, वे फूल चढ़ा दिये। फिर भूमि पर दो-तीन बार माथा टेककर मन-ही-मन न जाने क्या-क्या कहा।

उठकर हाथ जोड़े बाबा जी के सामने, और कहा—"स्वामी जी, महाराज, रात में बड़ी चहल-पहल सुनाई दे रही थी, मन्दिर में खूब शंख-ध्वनि हो रही थी।"

"हाँ, माता जी आई हैं कैलास से।"

"हाँ, वह भी रात ही ज्ञात हो गया था। सुना था, बड़ी तपस्विनी हैं। सूर्य को नहीं देखतीं और अँधेरे ही में चलती-फिरती हैं। हम जैसे पापी तो इस को सोचकर ही घबरा उठते हैं। रहेंगी कुछ दिन यहाँ?"—धनसिंह पोस्टमास्टर ने पूछा।

"देखो, अगर मन लग गया तो शायद रहें।"

"मेरे योग्य सेवा बताइए महाराज, आज पूजा का भी इन्तजाम किया है आपने। प्रसाद बनाने के लिए दो बड़ी कढ़ाइयाँ भेज दूँगा मैं। दस-बीस गिलास भी हैं मेरी चाय की दूकान के उन्हें भी शाम तक भेज दूँगा। दूध, दही, साग-पात, फल-फूल तो सब आ जायगा भगवान् की सेवा में बिना माँगे ही। चाय-चीनी है या नहीं? बीड़ी-तमाखू भी?"—धनसिंह ने पूछा।

एक-दो घोड़ेवालों ने हल्द्वानी से ला देने को कहा तो था, पर अभी तक नहीं आए। शायद आज आ जायँ।"—देवगिरि जी ने कहा।

"भली चलाई उनकी। पच्चीस-तीस सेर चीनी तो होगी मेरे पास। एक सौ आदमियों से अधिक होंगे क्या?"

"कुछ नहीं कहा जा सकता? भगवान् की पूजा है। न मालूम कितने लोग आ जायँ। उनकी श्रद्धा की बात है, मना किसी को नहीं किया जा सकता।"

"तो भी क्या परवा है! मेरे पास गुड़ की कमी नहीं है। कुछ लोगों के लिए गुड़ की चाय बना ली जायगी।"

पोथी-पत्रा लेकर जैकिशन भी आ पहुँचा, बोला—"नहीं, मैं हरगिज न पीऊँगा गुड़ की चाय।"

धनसिंह ने कहा—"तुम्हारे लिए कौन कहता है ?"

"सत्यनारायण के दरबार में सब बराबर हैं। यहाँ कोई भेद-भाव नहीं होगा।"—देवगिरि ने कहा।

धनसिंह बोला—"अच्छी बात है। ऐसा ही होगा। उसका काम वही निबाहने वाला भी है, हम कौन हैं करने वाले ? मेरे पास जो कुछ है, सब आपकी सेवा में हाज़िर है। ज़रूरत के मुताबिक माँग लीजिएगा।"

बाबाजी बोले—"चाय की पत्तियाँ ?"

धनसिंह ने जवाब दिया—"छोटे बंडल तो हैं, बड़े नहीं हैं।"

जैकिशन कहने लगा धनसिंह की पीठ में एक थपकी देकर—"पोस्ट मास्टर ! एक आने का एक टिकट न सही पैसे-पैसे के चार लग जावेंगे। क़ानून में मनाही थोड़े है।"

धनसिंह हँसकर बोला—"ग्रामोफ़ोन मैं अपने साथ ही लाऊँगा, नहीं तो ये सब उसे तोड़-फोड़ देंगे।"

जैकिशन बोला—"नहीं बाबा, तुम उसे अपने साथ भी मत लाना।"

धनसिंह ने बिगड़कर कहा—"क्यों मत लाना ? बढ़िया-बढ़िया भजनों के रिकार्ट हैं मेरे पास। रौनक रहेगी।"

"हमें क्या गाना नहीं आता, लकवा मार गया है क्या ! बड़ी रौनक रहेगी ! वह सब झूठा गाना, सत्यनारायण के दरबार में उसकी कोई ज़रूरत नहीं। जब से यह चला इसने संगीत की कला को नष्ट कर दिया। लोग गाना भूल गये।"—जैकिशन ने ताव में आकर कहा।

धनसिंह बोला—"उससे मेरा क्या मतलब है, बाबाजी जैसी आज्ञा देंगे।"—उसने देवगिरि जी की तरफ़ देखा।

देवगिरि बोले—"क्या हर्ज है ! दिनभर रातभर थोड़े गाते रहोगे बीच-बीच में एक-दो तवे उसके भी घुमा दिये जावेंगे, क्या हर्ज है ?"

"आप मालिक हैं जो चाहें सो करें।"—जैकिशन ने पराजय स्वीकार की।

"और कोई चीज याद कर लीजिएगा। ज़रा भी संकोच न कीजिएगा दाता का काम है।"—जाते हुए धनसिंह बोला—"मुझे तो पेट की गुलामी है। वक़्त पर डाकखाना खोलना ही पड़ेगा। डाक आ पहुँचेगी।"

जैकिशन उसकी बाँह में हाथ दे उसके साथ-साथ चला—"ठाकुर साहब, क्या बताऊँ मेरे पास थी एक पोटली, चूहे घसीट ले गये। कहाँ ले गए कहाँ खोदें उनका बिल ?"

धनसिंह रूखा होकर कहने लगा—"क्या मतलब है तुम्हारा ."

"एक-आध बत्ती भी मिल जाय तो बड़ी कृपा हो। मैं दाम दे दूँगा।"—जैकिशन ने बड़ी नम्रता से कहा—"लेकिन ग्रामोफोन तुम अपने साथ ही लाना। कौन जाने कोई किधर को मरोड़ दे उसकी चाबी! नाजुक चीज, हल की फाली थोड़े ठहरी।"

"कैसी बत्ती ?"—उसने पूछा—"गैस तो नहीं है मेरे पास, लालटैन भेज दूँगा।"

उसके कान में बोला जैकिशन—"चरस की बत्ती!"

"अरे बाप रे!"—अपनी बाँह छुड़ाकर भागा धनसिंह—"इसका नाम मत लो। मैं सरकारी नौकर। नौकरी से तो जाऊँगा, जेलखाने की भी हवा खिलाओगे क्या ?"

देवगिरि ने आवाज़ दी—"तिवाड़ी जी, तुम्हें काम के लिए बुलाया है, वक़्त खोना नहीं है। लोग आने लगे हैं। सब का इन्तज़ाम करना है।"

जैकिशन बाबाजी के पास चला गया। लोगों का आना शुरू हो गया था। खाली हाथ कोई भी न था। कोई दूध, कोई दही, कोई साग-पात, घी लेकर चला आ रहा था। बाबाजी का अभिनन्दन कर सभी बोले—"स्वामी जी, हम आपकी सेवा करने आए हैं, काम बताइये।"

× × ×

कथा के लिए मन्दिर का आँगन ही उपयुक्त था। जैकिशन चार-पाँच आदमियों को लेकर मण्डप बनाने में लग गया। कुछ लोगों ने झाड़-बुहारकर दरियाँ-चटाइयाँ बिछा दीं।

धर्मशाला के भीतर के कमरे में भंडार बनाया गया। उसके बाहर भट्टी खोदी गई। अभी साधारण लोग ही आकर जमा हुए थे। कोई बरतन धोने में लगा, कोई लकड़ी चीरने, कोई पानी जमा करने और कोई इधर-उधर से सामान ढोने लगा।

जैकिशन उखड़-उखड़ा अपना काम कर रहा था अचानक शेरुवा लाटा आ पहुँचा। उसने बड़ी भक्ति-भाव से उन्हें प्रणाम किया।

जैकिशन क्रोध से बोला—"चोट्टे! तू क्यों आया यहाँ? निकल।"

शेरुवा ने अपनी अंटी में से एक बत्ती चरस की निकालकर उसको समर्पित की—"मे-मेरा क-कसूर?"

जैकिशन का सारा रोष हवा में मिल गया—"तूने उस दिन मुझे श्याम संखिया पिला दिया।"

"मैं-मैंने? न-नहीं, मैं-मैंने तो सं-संखिया दे-देखा भी नहीं।"

"अच्छा, इस वक़्त बहस की फ़ुरसत नहीं। जा बगीचे में से चार पेड़ केले के काटकर ला। ठहर, उससे पहले दम लगा ले।"

इसी समय देवगिरि आ पहुँचे, बोले—"तिवाड़ी जी, तुम तो कुली बनकर इस मण्डप में लग गये। तुम्हें पूजा के लिए बुलाया है।"

"पूजा तो रात को होगी।"

"इस समय भी कुछ करनी है।"

"क्या?"

"नवग्रह पूजन, कुछ जप, कुछ पाठ और कुछ हवन।"

"कहाँ होगा?"

"मेरे घर के नीचे की मंजिल में। माता जी की आज्ञा है, जिससे उस घर की शुद्धि हो जाय।"

"कौन माता जी ?"

"परहोश न होओ माता जी आ गई हैं कैलास से !"

"आ गईं ? अच्छी बात है, मैं परहोश नहीं हूँ । शोरुवा कहता है, उसने मुझे संखिया नहीं खिलाया। खाली मेरा वहम था !"

"चलो फिर वहाँ वेदी बनाओ। पूजा की साज-सज्जा तैयार करो !"

"चलिए !"

बाबाजी उसे लेकर अपने मकान में गये। पूजा की सामग्री बाबा ने वहाँ तैयार ही कर रक्खी थी। जो कुछ कसर थी, जैकिशन उसे पूरा करने लगा। बाबा जी ने ऊपर माता जी के कमरे में ताला लगा रक्खा था, इसलिए वे बेखटके बाहर के इन्तज़ाम में लगे।

जैकिशन को बत्ती मिल गई थी, उत्साह से काम करने लगा। बाबा जी के जाने पर उसने एक सिगरेट में चरस भरी, खींचकर दम लगाई और उसका उत्साह चरम सीमा में पहुँच गया। वह होम के लिए वेदी बना उसमें आटे से आड़ी-तिरछी रेखा खींचते हुए गाने लगा—

"शंकर महादेव देव सेवक सुर जाके।"

ऊपर भागा के कमरे में ! सूर्य की कोई भी किरण उस कमरे में न जा सके, ऐसा तो प्रबन्ध किया गया था। कोई मनुष्य भी वहाँ प्रवेश न पा सके—इसकी भी उचित देख-रेख थी। लेकिन मनुष्य की आवाज़ उसको देवगिरि का ताला रोक न सका।

जैकिशन के स्वर भागा के कमरे में जा पहुँचे। भागा उस अन्धकार में जिस ज्योति की कल्पना कर रही थी उसके लिए भयानक झंझावात बनकर आ गया वह गीत ! उसके मन में एक बेचैनी की लहर उठ गई ! आकर्षण की नहीं, विकर्षण की—राग की नहीं द्वेष की !

जैकिशन ने अन्तरा गाया—

"भस्म अंग, शीश गंग,
वाहन-बल अति प्रचण्ड
गौरी - अर्धंग संग,
भंग - रंग छाके।
शंकर महादेव देव सेवक सुर जाके!

११

धीरे-धीरे मन्दिर लोगों से भर गया। जिसके पास जो था, वह देवता को भेंट के लिए ले चला। फल-फूलों का ढेर लग गया, दूध-दही, घी आदि रखने को बरतनों की कमी पड़ गई।

जिन गाँवों को न्यौता भेज रक्खा था उनके अलावा और भी गाँवों से देवगिरि जी के स्नेहवश ही लोग भेंट की चीजें सिर, कन्धे, पीठ या हाथों में लिये हुए आ पहुँचे देवता की अभ्यर्थना को।

घोड़े पर चढ़कर पटवारी जी आ पहुँचे। हाथ जोड़कर बोले—"स्वामी जी, मैं अभी दौरे पर से आ रहा हूँ अभी फिर जा रहा हूँ। शाम तक जरूर आऊँगा। मेरे योग्य जो सेवा हो निसंकोच कहिए। मैं अपने घर की चाबी धनसिंह को दे चला हूँ। दरी-गलीचे बिछाने को जो भी चाहिए मँगवा लीजिए। कुछ बरतन भी निकल आवेंगे। और कोई काम हो तो वह भी बताइये।"

स्वामी जी ने उनके अनुग्रह का समर्थन किया और सत्यनारायण प्रभु के प्रताप से कोई कमी नहीं बताई। कथा में उपस्थित होकर वे प्रसाद पावें केवल यही इच्छा प्रकट की।

फॉरेस्टर आए उन्होंने भट्टी के लिए लकड़ियों का ढेर लगा दिया। प्रसाद बाँटने के लिए अंजीर के पत्ते तुड़वाकर भेज दिये। जो कमी थी, सेठ और प्रधानों ने आकर पूरी कर दी। देवगिरि जी सब तरफ योग्य हाथों में प्रबन्ध को सौंपकर निश्चिन्त हो गये। माता जी के दर्शनों की सब लोगों के मन में बड़ी लालसा थी, वहीं आकर सबको यह पता चला कि उन्होंने असूर्यंपश्या का व्रत लिया है, और अभी उसके पूर्ण होने में कई साल लगेंगे।

देवगिरि जी का व्रत था आज, माता जी का भी, पर उन्हें दूध पिला दिया गया था। जैकिशन का भी उपवास था, उसे चरस मिलनी

चाहिए, अन्न को कुछ नहीं गिनता वह, हाँ, सहारे को चाय चाहिए। भक्त लोगों की कृपा से चीनी-चाय भी जुट गई थी।

जैकिशन ने स्वामी जी के पास आकर कहा—"महाराज! सब पूजा की साज-सज्जा प्रस्तुत है।"

पूजा-पाठ के लिए देवगिरि जी ने पन्द्रह और ब्राह्मणों को बुला रक्खा था। सबको एक-एक गिलास दूध पिलाया गया। सबने हाथ-पैर धोकर देवगिरि जी के मकान में प्रवेश किया और अपने-अपने आसन पर बैठकर उच्च स्वर से पाठ करना आरम्भ किया।

एक ओर पूजा शुरू हुई। देवगिरि जी पूजा करने बैठे। जैकिशन पूजा कराते हुए बोला—"महाराज, माता जी स्वयं आकर पूजा में बैठतीं तो अत्युत्तम होता।"

देवगिरि बोले—"इस समय तक तुम बिलकुल ठीक चल रहे थे, अब तुम्हारा दिमाग गड़बड़ाने लगा है।"

"आपके चरणों की कृपा से अब ठीक हूँ महाराज!"—आज शेरुवा ने सच-सच कह दिया।

"तुम्हें अपना बल रखना चाहिए। वह लोटा क्या किसी को बनावेगा और बिगाड़ेगा?"

"मेरा मतलब ऐसा था माता जी आकर पूजा की शोभा बढ़ा देतीं तो पूजा में दूसरी ही बात हो जाती।"

"वे धूप में नहीं आ सकतीं।"

"द्वार बन्द कर देंगे।"

"वे मनुष्यों का मुख नहीं देख सकतीं।"

"हम सब उनकी संतान हैं, फिर माता को संतान का मुख देखने में क्या कठिनाई है?"

"मैं कहता हूँ तिवाड़ी जी, मुझे तुम्हारी जगह किसी दूसरे ब्राह्मण को नियुक्त करना होगा।"

जैकिशन घबराकर बोला—"नहीं महाराज, मैं ठीक हूँ।"

"देखो, किसी एक के लिए यह पूजा नहीं की जा रही है। यह हम सब के पापों के प्रतिकार को ही आयोजन किया गया है। तुम इसे अपनी पूजा समझो, भगवान् की शरण लो, वह तुम्हारे तमाम रोग-शोक, दुख-दरिद्र को नष्ट करने की शक्ति रखता है।"—देवगिरि बोले।

जैकिशन ने उनके पैर छूकर कहा—"आपकी आज्ञा शिरोधार्य, अब एक भी शब्द व्यर्थ का न बोलूँगा। केवल एक मिनिट की छुट्टी दीजिए, कुछ शंका दूर कर आता हूँ।"

"तुरन्त ही आना।"—देवगिरि हँसे।

जैकिशन दौड़कर मन्दिर में गया। मंडप में किसी को ढूँढ़ा, उसे नहीं मिला। धर्मशाला में गया जहाँ रसोई बन रही थी वहाँ भी नहीं। जहाँ चाय बन रही थी, वहाँ भी नहीं। अन्त में लकड़ी चीरता हुआ शेरुवा मिला उन्हें।

जैकिशन को देखते ही शेरुवा कुल्हाड़ी फेंक उनके पास आया, बोला—"वाह महाराज! तुम तो गायब हो गये।"

"वह चरस की बत्ती कहाँ है? मैंने तुझे दी थी, या तूने मुझे दी थी?"

"ऐसा ही कहोगे तुम। आपने अंटी में रक्खी थी।"

"अंटी में तो नहीं है।"

"कहीं गिर गई होगी या तुम पी गये होगे।"

"और नहीं है?"

"नहीं।"

निराश होकर लौटा जैकिशन पूजा के लिए। अचानक धूनी पर से किसी ने आवाज दी—"पंडित जी, इतने बड़े पर्व के दिन कुछ काम नहीं तुम्हें, लो एक दम लगाते जाओ।"

सिर से पैर तक खिल उठा जैकिशन, वही तो शंका थी उसकी, जल्दी-जल्दी में कई दम लगाकर पहुँचा देवगिरि जी के पास—"महाराज, देर तो नहीं हुई।"

स्वामी जी केवल हँसे, कुछ बोले नहीं।

जैकिशन स्थिर होकर बैठ गया और पूजा कराने लगा—"आचमन कीजिए, पुष्प हाथ में लीजिए।"

पण्डित लोगों के पाठ के स्वरों से वायुमण्डल में एक विचित्र भावना लहरा उठी थी। ऊपर के कमरे में कुछ देर पहले भागा जैकिशन का गीत सुनकर त्रस्त हो गई थी। वह समझने लगी थी, जीवन के समस्त प्रकाश को छोड़कर इस अन्धकार की बंदिनी होने पर भी वह पाप की आवाज़ मेरा पीछा कर ही रही है। उसके गीत के अन्त होने तक वह छटपटाती ही रह गई थी। कहे तो किससे कहे? होठों पर दोहरे ताले। एक तो मौन का, दूसरा······वह अपने पाप की कथा कैसे कहे स्वामी जी से?

अब समवेत स्वरों में स्तोत्र और मन्त्रों की ध्वनि से वह गद्‌गद् हो गई। उसको विश्वास होने लगा आज निःसन्देह उसके पापों के क्षय की बारी आ गई है। विश्वास बहुत बड़ी शक्ति है। भागा के शुभ संस्कार जाग उठे।

वह उस कमरे के अन्धकार में बंदी होकर मन्दिर में उपस्थित तमाम लोगों के हृदय में एक कौतूहल का कारण हो रही थी। प्रायः सभी लोग उसी की बातें कर रहे थे।

कोई उसकी कठिन तपश्चर्या का वर्णन करते हुए कह रहा था—"माता जी ने कठिन शीतल हिमानी के आसन में बरसों प्राणायाम साधा है।"

कोई उनके आयु और वंश की बात चलाकर कहता था—"वे तिब्बत की रहने वाली हैं, आयु पचास वर्ष के आस-पास होगी पर तपसिद्धि के कारण पूरी षोड़षी दिखाई देती हैं।"

कोई कहता—"ये दलाई लामा की सम्बन्धिनी हैं, अपने साथ बहुत-सा रुपया लाई हैं।"

जितने मुख उतनी ही बातें थीं। किसी ने उनको देखा नहीं था,

फिर इतनी बातें सत्यनारायण जी के दरबार में कहाँ से उपज गई ? देवगिरि ने कोई ऐसा बात नहीं चलाई थी। किंवदन्तियों में बड़ी अजीब तरह से अंकुर फूटते हैं।

चौदह ब्राह्मणों को देवगिरि ने दो-दो सम्पुट पाठ दे रक्खे थे। एक-एक सम्पुट पूरा होने पर उन्होंने बीच में सबको थोड़ी-थोड़ी छुट्टी दी और एक-एक गिलास दूध और एक-एक कप चाय का पिलाया। दो बज गये थे। इसी पाठ के लिए फिर पण्डित लोगों ने आसन ग्रहण किये।

चार बजे सन्ध्या-समय से मन्दिर के आने वालों की संख्या बढ़ने लगी। अब उनमें स्त्रियाँ और बालक भी शामिल थे। धनसिंह की दूकानदारी चेत उठी थी। चाय उबालते-उबालते उसकी नाक में दम थी। ग्राहकों से वह ऐसा घिर गया था कि मन्दिर में जाने की फुरसत ही न निकाल सका। वह सोचता ये चार ग्राहक चाय पीकर जायँ तो किसी को दूकान की निगरानी में रखकर एक चक्कर लगा आऊँ वहाँ का।

उन चारों के जाने से पहले ही दूसरे छः आ पहुँचते, और यह क्रम कभी न टूटा। कभी इस गाँव के प्रधान जी आए तो कभी उस गाँव के सेठ। धनसिंह को उनके प्रश्नों के उत्तर के सिवा अपनी बुद्धि भी दिखानी पड़ती थी।

गाँव से एक गोद के बच्चे को लेकर उसकी पत्नी भी आ पहुँची थी। अक्सर दिन में आ पहुँचती थी। कभी दूकान में कुछ झाड़-पोंछ कर जाती, ईंधन जुटा जाती, कभी गाय के लिए घास-पात रख जाती—गोबर साफ कर जाती। आज विशेष साज-सज्जा के साथ आई थी, नया लहँगा और ओढ़नी पहनकर। कथा में उपस्थित होना था, धनसिंह सब पोस्टमास्टर की पत्नी के अनुकूल वेश-विन्यास करना ही था।

धनसिंह बोला—"बड़ी देर में आईं तुम ! मुझे एक मिनिट की फुरसत नहीं। मन्दिर मैं अभी तक नहीं जा सका हूँ।"

"मैं तो आ गई हूँ। मैं हो आती हूँ।"

"हूँ! तुम हो आती हो। कथा छै-सात बजे से होगी। तुम तब जाओगी, और फिर कथा सुनने जाओगी। अरे, इन्तजाम में शामिल होना चाहिए न मुझे। कभी डाकखाना कभी दूकानदारी, डाक से अब छुट्टी पाई है, दूकानदारी चौबीस घण्टों की!" धनसिंह ने चीनी की बोरी की तरफ़ देखा—"और यह चीनी देने का वचन दे आया था मैं उन्हें। देखता हूँ यह तो यहीं समाप्त हो गई। भीतर की बोरी में कितनी है देखो तो?"

"दो-चार सेर होगी।"—उसने जवाब दिया।

"शायद और कहीं रक्खी हो, सब देखो तो भीतर।"

पत्नी शीघ्र ही श्रोताओं के बीच में जाने के उत्साह में थी। रोज की बेगार में फँसने को तैयार न थी। क्या करती? बच्चा उसकी नाक की नथ की चमक से आकर्षित हो उसे पकड़ रहा था। उसने बच्चे को पति की गोद में दिया और भीतर जाकर चीनी टटोलने लगी। कहीं कुछ न मिला। बाहर आकर बोली—"चार-पाँच सेर से ज्यादे न होगी।" वह पति की गोद से बच्चे को लेकर मन्दिर की तरफ़ जाने लगी।

"तुम कहाँ जाने लगीं, दूकान की चौकसी करो। इस समय कोई ग्राहक नहीं है, मैं दौड़कर स्वामी जी से माफ़ी तो माँग आऊँ। दस-बीस सेर से अधिक चीनी न दे सकूँगा उन्हें। कथा में अभी बड़ी देर है, अभी तो वहाँ सिर्फ़ इन्तजाम हो रहा है। क्या मेला जुड़ गया यह तो अच्छा-खासा! माई जी आई हैं न कैलास से सो सभी उनके दर्शन को आये हैं, लेकिन दर्शन मिलेंगे नहीं किसी को।"—कहता-कहता धनसिंह मन्दिर की ओर को चला गया।

सब से पहले भंडार में जाकर पहुँचा। देखा पूरे दो मन से कम चीनी जमा न होगी। धनसिंह के प्राण में प्राण आये। पूछा उसने "यह चीनी कहाँ से आई?"

भंडारी बोला—"कुछ पटवारी जी ने मँगवा दी, कुछ ठेकेदार

जी के यहाँ से आई है उनकी लड़की की शादी दो-तीन महीने के लिए टल गई है न।"

"स्वामी जी कहाँ हैं?"—फिर पूछा उसने।

"पूजा में बैठे हैं। क्या काम है?"

"कुछ नहीं। चीनी के लिए कह गया था मैं।"

"मुफ्त मिल गई, तो फिर दूकानदार के यहाँ से कौन मँगवाता? फालतू है तो भेज दो प्रसाद बना देंगे। सत्यनारायण जी के खाने में तुम्हारा भी नाम लिख जायगा!"—भंडारी बोला।

धनसिंह हँसता हुआ कहने लगा—"यहाँ जरूरत है तो भेज दूँगा। दूकानदार के पास फालतू क्या होता है?"—वह मन्दिर की ओर चला।

स्वामी जी वहाँ भी नहीं मिले। धनसिंह उनके घर गया। देखा, पण्डित लोगों की वाणी पाठ करते-करते घिस गई थी। देवगिरि भी पूजा में बैठे थे। देखने योग्य दृश्य था। पूजा के मंत्रों और यज्ञ के धूम से वातावरण में बड़ी पवित्रता छा गई थी।

धनसिंह भी भीतर जाकर एक जगह बैठ गया। बाबा जी की उस पर दृष्टि पड़ी तो उसने पूछा—"क्यों धनसिंह?"

"हाँ महाराज, सेवक हाज़िर है। क्या चाहिए?"

"मैं यहाँ बैठा हूँ, मुझे कुछ नहीं मालूम। बाहिर लोगों से पूछो।"

"भंडार में गया था, वहाँ सब तो मौजूद हैं?"

"वही जानें। फिर पूछ देखो किसी चीज़ की जरूरत हो तो।"

धनसिंह वहाँ से उठा। मन में सोचता गया। ऐसा मेला महीने में एक भी हो जाया करे तो सारा दुख-दरिद्र कट जाय। वह फिर भंडार में गया और पूछने लगा—"क्यों भाई, किसी चीज़ की जरूरत हो तो कहो?"

वहाँ का एक कर्मचारी बोला—"जो कुछ फालतू हो दे जाओ

भाई। देखते नहीं हो इतने भक्त यहाँ जमा हैं। सब स्वाहा हो जायगा बाकी जो रहेगा सबके घर पहुँचा देंगे।"

धनसिंह बोला--"फालतू चीज़ तो नहीं है, मैं ज़रूर फालतू हूँ। अभी हाज़िर होता हूँ।"—वह दूकान को चला गया

एक ने कहा—"पूछ लेना भाई किसी से।"

धनसिंह लौटा, फिर पूछा उसने—"कथा कितने बजे से होगी?"

"घंटा भर लग जायगा अभी शुरू होते-होते। क्या बजा है?"

"छै बजेगा।"—धनसिंह ने पूछा—"दिया-बत्ती का क्या इन्तज़ाम है?"

"दो गैस हैं, पाँच-चार लालटैनें हैं, कुछ और आनेवाली हैं। तुम्हारे पास कुछ हो तो ले आओ।"

धनसिंह दूकान में जा पहुँचा। पत्नी से पूछा—"कोई नहीं आया?"

"नहीं।"

"जाओ तुम भी जाओ। वैसे तो अभी कथा में बड़ी देर है। पर औरतों के बठने का इन्तज़ाम होने लग गया है। समय से जाओगी तो अच्छी जगह मिल जायगी। कोई नहीं आता, मैं भी दूकान बन्द करके आता हूँ।"

श्रीमती खुश होकर बच्चे को लेकर मन्दिर को चली। धनसिंह ने फिर कुछ देर ग्राहकों की राह देखी।

अब लोगों का आना प्रायः बन्द ही था। धनसिंह मन में सोच रहा था कथा में प्रसिद्धि पाने का कोई उपाय। ग्रामोफोन का सहारा तो पकड़ रखा था उसने लेकिन जैकिशन के विरोध से उसको साहस नहीं हो रहा था। वह पूजा में बैठा था यह ध्यान आते ही धनसिंह ने ग्रामोफोन निकालकर उसके ऊपर की धूल झाड़ी। रेकार्ड और सुइयों का डिब्बा बाहर निकाला। डाकखाना और दूकान सावधानी से बन्द कर दिये।

ग्रामोफोन पोर्टेबल था—एक हाथ में उसे लटकाया, एक बगल में जमाया रेकार्डों का डिब्बा, सुइयाँ रख लीं जेब में। धनसिंह सब-पोस्टमास्टर मन्दिर को विजित करने चले।

कथा का मंडप प्रत्येक साज-सज्जा से परिपूर्ण हो गया। एक ओर नारियाँ बैठ गई थीं। सम्माननीय पुरुषों के स्थान अभी खाली पड़े थे। वे प्रायः अभी पूजा-घर में थे। उनके पीछे की तरफ़ कुछ साधारण लोग दरियों में बैठे थे। धनसिंह अपना ग्रामोफोन लेकर सीधे मंडप में जा पहुँचा।

एक नवयुवक धनसिंह की पीठ ठाककर बोला—"वाह! धनदा, बड़ी सुनसानी हो रही थी। लोग खाली बैठे-बैठे उकता रहे थे, मैं सोच ही रहा था क्या किया जाय? तबले-हारमोनियम वाले तो पूजा-पाठ में बैठे हैं। सत्यनारायण की कथा के रिकार्ड भी हैं?"

"चुपो भाई, सत्यनारायण की कथा के रिकार्ड बजा दोगे तो फिर पंडित लोगों की विद्या कहाँ जायगी? वे जीता ही चबा डालेंगे हम-तुम दोनों को।"—धनसिंह बोला मंच पर अपना ग्रामोफोन रखकर।

फिर उसने पूछा—"धनुष-यज्ञ है?"

"मँगा रक्खा है, अभी आया नहीं।"

"फिर क्या है?"

धनसिंह रिकार्ड का डिब्बा खोल रिकार्ड छाँटने लगा। इतने में नवयुवक ने उसकी चाबी पर हाथ रक्खा। धनसिंह ने तुरन्त ही उसका हाथ पकड़ लिया—"नहीं, इसमें किसी को हाथ नहीं लगाने देता मैं। बड़ी नाजुक चीज है। इसके टूटने की मुझे परवा नहीं। फिर बजेगा कैसे यह यहाँ पर? लोहे का स्प्रिंग है रस्सी हो तो गाँठ भी दी जा सकती है।"

दो-चार धार्मिक रिकार्ड बजाकर अच्छी रौनक कर दी धनसिंह ने। चारों ओर बिखरे लोग आ-आकर सब बैठ गये। कुछ बच्चों ने कथा का मंच ही घेर लिया। धनसिंह ने ग्रामोफोन बन्द कर दिया। सबने

आग्रह किया।

धनसिंह बोला—"यहाँ पर कोई नहीं रहेगा। सब लोग अपनी अपनी जगहों में जावें तो फिर बजाऊँगा।"

सब लोग मंच से हट गये। धनसिंह ने फिर एक-दो रिकार्ड बजाए और फिर ग्रामोफोन बन्द कर दिया। लोग कहने लगे—"भाई और बजाओ न फिर तो थोड़ी देर में कथा प्रारम्भ हो जायगी, पूजा समाप्त होने को है।"

धनसिंह ने कहा—"कथा के बाद बजाऊँगा, अभी तो सारी रात पड़ी है।"

"रात को तो जागरण होगा। हारमोनियम-तबला बजेगा।"—एक ने कहा।

दूसरे ने कहा—"एक पहाड़ी गीत बजा दो पोस्टमास्टर साहब!"

धनसिंह को कुछ याद आई। उसने डिब्बा टटोलकर एक रिकार्ड निकाला। फिर उसका नाम पढ़ा और ग्रामोफोन की कीली में जमा दिया उसे। चाबी देकर रिकार्ड के घेरों में छोड़ दी सुई। रिकार्ड बज उठा—

"छाना-बिलौरी झन दिया बौज्यू
लागला बिलौरी का घाम।"

बालकों और नवयुवकों में नया उत्साह फैल गया। महिलाएँ भी घूँघटों की ओट से एक-दूसरे का मुख देखकर हँसने-मुसकराने लगीं और कोई-कोई किसी के चिकोटी काटने लगीं। रेकार्ड बज रहा था—

"लागला बिलौरी का घाम बौज्यू
लागला बिलौरी का घाम।"

मिडिल स्कूल के हेड पंडित जी आकर कहने लगे—"कोई भगवान् की भक्ति का बढ़िया गीत बजाते धनसिंह, यह भी कोई गाना हुआ?"

"क्या खराबी है इसमें? कुमारी कन्या अपने पिता से कह रही है—हे पिता, मुझे छाना-बिलौरी के गाँवों में न देना, वहाँ घाम लग

जावेंगे मुझे।" धनसिंह बोला—"तुम स्कूल के पंडितों ने सारी दुनिया की भलाई का ठेका ले लिया है ?"

रिकार्ड ने भौंरा बजाया—

"हाथै कि दातुलि हाथै में रौली,
लागला बिलौरी का घाम।
हाथै कि कुटलि हाथै में रौली,
लागला बिलौरी का घाम।
छाना-बिलौरी झन दिया बौज्यू,
लागला बिलौरी का घाम।"

पूजा समाप्त हो गई थी। जैकिशन भी वहाँ पर आ पहुँचा था। कहने लगा—"पहले तो यह गाने की मशीन एक खराब चीज़, फिर उस पर यह गाना क्या किसी धार्मिक उत्सव के योग्य है ?"

हेड पंडित जी को सहारा मिला, बोले—"हाँ, यही तो मैं भी इनसे कह रहा हूँ।"

गाना समाप्त हो गया था। धनसिंह ने रिकार्ड बन्द करते हुए कहा—"क्या बुराई है इसमें ? कन्या कह रही है—हाथ का हँसिया और कुदाल हाथ ही में रह जावेंगे और बिलौरी की तेज़ धूप लग जायगी। हे पिता, मुझे छाना-बिलौरी के गाँवों में मत ब्याह देना।"

हेड पंडित बोले—"शंकर जी की स्तुति का नहीं है क्या कोई रिकार्ड, क्यों धनसिंह जी ?"

धनसिंह कुछ अनखाकर बोला—"है क्यों नहीं, बजा तो दिया।"

हेड पंडित ने आग्रह किया—"फिर बजा दो।"

धनसिंह ने कहा—"मेरी सुइयाँ ख़त्म हो गई हैं।"—वह ग्रामोफोन लेकर वहाँ से उठ गया।

इधर सत्यनारायण जी की कथा आरम्भ हुई और उधर भागा दिन-भर की चहल-पहल के बाद फिर अपने अन्धकार और नीरवता में समा गई।

उसके नवजीवन का वह नया दिन मुखरित हुआ था उसी के गीत से जिसने उसे जन्म-भूमि में मुँह दिखाने योग्य नहीं रक्खा था। उस समय तो वह बिल्कुल घबरा उठी थी। जिसके पाप के पश्चात्ताप के लिए भागा वहाँ आकर छिपी थी, वह उसके सर्व-ग्रास के लिए वहीं आ धमका था। विधाता के उस न्याय और उस संयोग को देखकर तो वह कुछ समय तक हतबुद्धि और गतचेतना-सी होकर कमरे में इधर-उधर फिरती रही। क्या करे, कहाँ जावे ?—कुछ न सोच सकी।

जैकिशन की वह स्वर-लहरी! वही उसे पाप के मार्ग में खींच ले गई थी, उसी ने उसे मर्यादा को तोड़कर बाहर निकल जाने की प्रेरणा दी। उस भयानक अन्धकार में कैसी निडर बन गई थी वह। आज वह गीत उसे विष-कलुष से भरा जान पड़ने लगा। क्यों उसी दिन वह उसके असली रूप को न समझ सकी। पाप में इतना प्रकाश क्यों है, कलुष इतना आकर्षक क्यों है और विष में ऐसी माधुरी किस लिए है?

कुछ समझ में नहीं आया उसके। जब बाहरी जगत् पर कोई वश न चल सका उसका तो उसने अपने दोनों कानों में उँगलियाँ कोंच लीं और मन मारकर एक कोने में बैठ गई। अन्त में जब पंडितों की सम्मिलित ध्वनि में वह गीत खो गया तो उसे चैन मिला। फिर पाँच-छै घण्टे तक पूजा-पाठ के कोलाहल में वह अपना दुख भूल गई और किसी दूसरी दुनिया के बस जाने का विश्वास बढ़ाने लगी।

उसके बाद फिर मन्दिर में कथा होने लगी, अध्यायों की समाप्ति पर के शंख-नाद से वह उसका अनुमान कर रही थी। कथा के बाद फिर मन्दिर और धर्मशाला से आते हुए क्षीण जन-रव ने उसका ध्यान आकर्षित किया।

कुछ समय उपरान्त उसने बाहर का ताला खुलने का शब्द सुना। देवगिरि जी उसके लिए भोजन लेकर आये थे। उन्होंने उसके कमरे का ताला खोला। भागा ने भीतर से बन्द की हुई शृंखला उन्मुक्त की। देवगिरि जी एक मिट्टी का दिया लेकर उसके कमरे में आये।

उस समय शत-सहस्र वाक्यावलियाँ भागा के मस्तिष्क में आकर जमा हो गई थीं बाहर उच्चारित होकर उनका गुणानुवाद करने के लिए। लेकिन वह भावातिरेक से कुछ न बोल सकी, उसने उनके चरणों को अपने आँसुओं से धो दिया।

"नहीं माता, तुम देवी हो, तुम्हारा यह दैन्य मेरे लिए असह्य है। मैं जो कुछ कर रहा हूँ, सब भगवान् के संकेत के अनुसार है। इसमे तुम्हें बाधित होने की कोई आवश्यकता नहीं।"

भागा ने सिर उठाया। उसके अधर स्पंदित होने को हुए कि देवगिरि जी ने उसे याद दिलाकर कहा—"नहीं माता, तुमने मौन व्रत लिया है। अभी यह व्रत नया ही है, इससे उसके टूट जाने का बड़ा भय है। कुछ दिन तुम्हें मेरे सामने बड़ी सतर्कता रखनी होगी। कोई कठिनता नहीं है। नया मार्ग कुछ ही समय तक कठिन जान पड़ता है। अभ्यास से फिर अपने-आप सरलता उत्पन्न हो जाती है।"

भागा मन में सोचने लगी, स्वामी जी से यह कह दूँ कि वे जैकिशन को मन्दिर में गाने न दें। एक बार मौन तोड़ देने में क्या हानि है? जब उसके एक गुरुतम पाप का प्रायश्चित्त हो सकता है, तो यह व्रत-भंग उसके सामने क्या चीज है—इसका भी प्रतिकार हो जायगा। हठात् उसका कंठावरोध हो गया। उसके मन में आया स्वामी जी कारण पूछेंगे तो क्या कहूँगी? उसने अपना विचार छोड़ दिया।

देवगिरि जी एक सिगड़ी में फिर कुछ कोयले जलाकर ले आये और बोले, "अग्नि—यह भी एक देवता है। यद्यपि शीत की अब वह तीक्ष्णता नहीं रही, फिर भी तुम्हें इससे एक सहारा हो जायगा। मैं तुम्हारे लिए अब भोजन लाता हूँ और फिर तुम्हें वाणी के संयम की याद दिलाता हूँ।" वे फिर नीचे चले गये।

भागा सोचने लगी, एक वयोवृद्ध तपस्वी के लिए मैं इतने श्रम और चिन्ता का कारण बन गई। भगवान् न करे अगर ये कभी बीमार पड़ गये तो फिर क्या होगा?

देवगिरि जी उसके लिए सत्यनारायण का प्रसाद लेकर आ पहुँचे और उसे विचार-मग्न देखकर बोले—"लो यह देवता का प्रसाद पाकर मन की तमाम चिन्ता और संशय दूर कर दो।"

भागा को फिर वाणी में फूट पड़ने को व्यग्र देखकर वे बोले—"माता, अक्षर और शब्द सब कुछ भूल जाओ तो तुम देखोगी भावना एक नये ही स्रोत से बहने लगेगी। तब तुम एक नये ही प्रकार से सोचने लगोगी और वह बिना वाणी के ही प्रकट हो जायगा। इस लिए अपने मौन पर दृढ़ रहो। भावना अपनी सूक्ष्मता में विशुद्ध है। वाणी की स्थूलता में ही उसके एक ओर प्रकाश है तो दूसरी ओर छाया है। सच और झूठ के दो विभागों का आरम्भ हो गया!"

भागा स्वामी जी की उन बातों को न समझ सकी। देवगिरि जी बोले—"समय आने पर तुम स्वयं समझ जाओगी। कोई किसी के समझाने से नहीं समझता। भोजन कर लो। मन्दिर में लोग भोजन कर रहे हैं और बहुत से लोग खा-पीकर चले भी गये। उसके बाद कुछ लोग रात-भर जागरण करेंगे, कीर्त्तन होगा।"

भागा फिर घबराई। कीर्त्तन में उसी का स्वर सबसे ऊँचा होगा, जिसे वह नहीं सुनना चाहती थी। वह फिर मन मसोसकर रह गई।

देवगिरि बोले—"भय की कोई बात नहीं है। तुम यहाँ बिल्कुल सुरक्षित हो। मैं जागरण में अधिक देर तक नहीं ठहरूँगा। अतिथि—अभ्यागतों को विदा कर चला आऊँगा। वेला बहुत हो गई, तुम अब भोजन कर लो।"

देवगिरि जी के जाने पर भागा भोजन करने लगी। कमरे के एक ओर स्वामी जी ने जल के संग्रह और उसके विकास के लिए भी प्रबन्ध कर दिया था। खा-पीकर भागा ने मुँह-हाथ धोए और फिर आग के पास बैठ गई।

आँखों में प्रकाश और अधरों में वाणी को बाँधकर भागा बैठ गई। दिनभर तो कोलाहल में उसका मन बहल गया था, पर अब रात

की शून्यता में उसका मन जाने और अनजाने देशों में विचरने लगा। जब उसे कोई व्याकुलता होती तो वह समझती मैंने पाप किये हैं इसीलिए यह देश-निकाले का दण्ड मुझे मिला है। स्वामी जी ने जो अन्धकार और नीरवता में बन्दी किया है, बिना उस दण्ड के मेरी पाप से निष्कृति भी न होगी।

वह कभी जीवन के अतीत में दौड़ जाती। छोटी उमर में उसका विवाह हो गया था, पति के देखे की उसे याद भी न थी। अनभ्र वज्र-पात की तरह एक दिन उसने यही सुना कि वह विधवा हो गई। इस लोक के तमाम सुखों का तिरस्कार कर उसे एक अज्ञात और अनबूझ भगवान् की अनुरक्ति सिखाई गई। वह अपना समस्त सुख-दुख कैसे उसे समर्पित कर दे, यह कभी उसकी समझ में नहीं आया। अचानक उसने एक दिन मन्दिर में जैकिशन का गीत सुना। वह भगवान् की भक्ति में तन्मय होकर गाता था। उस गीत के प्रति प्रीति करने में उसने कोई विकार नहीं समझा। वह उसे बराबर सुनने लगी। मालूम नहीं कहाँ पर से वह रास्ता भूल गई?

और फिर वह जीवन के भविष्य में दौड़ लगाती। उस अन्धकार में वह कितने दिन तक छिप सकेगी? देवगिरि जी वृद्ध हैं यदि उनको कभी कुछ हो गया तो फिर क्या होगा? इसी तरह बार-बार डूबती-उतराती भागा न जाने कितनी देर तक बैठी रह गई।

मन्दिर में स्तब्धता धीरे-धीरे छा गई थी; अचानक कीर्त्तन आरम्भ हुआ। रात की नीरवता में हारमोनियम और तबले का स्वर साफ़ सुनाई देने लगा। फिर सुनाई देने लगा उसे जैकिशन का गीत! वह सिर पीटकर सोचने लगी, हे भगवान्! यह जो विष-भरी लालसा चारों ओर फैला रहा है, क्या इसी का नाम कीर्त्तन है? देवता की आड़ लेकर जो पशुता इन गीतों में फैल रही है, वह देवगिरि जी को क्यों नहीं मालूम है? शूद्र के लिए मन्दिर में निषेध है और ये नशे में चूर नहा-धोकर शुद्ध हुए, बड़े-बड़े मन्त्रों का उच्चारण करने वाले क्या मन्दिर के गौरव हैं!

१२

भागा धीरे-धीरे अपने नियम में बँधने लगी। कुछ दिन बाद अन्धकार उसकी सरलता और मौन उसके अभ्यास में शामिल होने लगा। देवगिरि जी सुबह चार बजे उठकर उसे स्नान करा लाते। कुछ देर उसे धार्मिक शिक्षा देते और चिंतन का रहस्य समझाते, और फिर वे अपने कार्य-क्रम में लग जाते। पूजा-पाठ से निवृत्त होकर वे भगवान् का भोग लगाते। भागा और कभी-कभी अतिथि-अभ्यागतों के भोजन की व्यवस्था कर अन्त में आप भोजन पाते। दिनभर भागा उस अन्धकार में अपने विचारों के साथ रहती।

रात को फिर संध्या-आरती के पश्चात् स्वामी जी भागा को फिर कुछ देर के लिए उस बन्दीगृह से निकालते और उसे हाथ-पैर धुलाकर फिर उसके भोजन का प्रबन्ध करते।

जैकिशन की वही हालत रही, कभी-कभी उसका पागलपन जाग उठता। वह मन्दिर में नियमित रूप से आता और सुबह-शाम गाने लगता। भगवान् को रिझाने का उसका उद्देश्य हो सकता है, लेकिन अपने उस गीत से उस अज्ञातनाम और अज्ञात रूप असूर्यंपश्या के मन में भी वह अपने स्वर का प्रभाव डालना चाहता था।

वह कैलास से आई हुई माता जितना छिप गई थी, जैकिशन न जाने क्यों उसे उतना ही देखने को व्यग्र हो उठा था। सबकी दृष्टि को काटकर वह छिप गई थी, जैकिशन अपने गीत से उसे देखने लगा। गीत गाते समय शब्द अवश्य देवता के थे, लेकिन स्वर उसी असूर्यंपश्या के उद्देश्य से था—मन में निराकार ध्यान भी उसी का था।

जब वह गाना शुरू करता, भागा के मन में बड़ी बेचैनी हो जाती, पर क्या करती? एक दिन रात के समय जब देवगिरि जी भागा के लिए भोजन लेकर उसके पास गये थे, जैकिशन उस समय चरससे

प्रभावित होकर बड़े ऊँचे स्वरों में गा रहा था।

भागा ने कुछ नहीं कहा। एक विषाद की एक घनी छाया से उसका मुख मलिन हो गया और अपने-आप उसका मुँह उस दिशा की ओर खिंच गया।

देवगिरि जी ने एक-आध बार पहले भी भागा की ऐसी मुद्रा देखी थी। उस दिन वे समझ गये, बोले—"तुमको शायद यह गीत अच्छा नहीं लग रहा है। तन्मयता है इसके गीत में, पर वह नकली है, चरस के नशे की है, यदि इसमें भगवान् के प्रेम का नशा होता तो अवश्य ही उसमें स्वर्गीय आकर्षण होता।"

भागा के मुख के भावों में स्वामी जी का समर्थन प्रकट हुआ, उसने एक गहरी साँस ली।

"मैं भी उसके इस समय-असमय की राग-दारी को पसन्द नहीं करता, पर क्या करूँ? वह भगवान् का नाम गाता है, उसे मना किया नहीं जा सकता। उसके इस गीत का मैं इतना शत्रु नहीं हूँ, पर बिना चरस पिए वह गा ही नहीं सकता, चरस ने उसका दिमाग भी चाट लिया है।"

भागा के मुख में जो भाव प्रकट हुए उनसे ऐसा जान पड़ा, मानो वह कह रही है—मन्दिर में चरस पीने का निषेध कर दीजिए, कठोर निषेध।

देवगिरि कहने लगे—"मैंने कई बार मन्दिर में चरस न पीने को मना कर दिया। मैंने स्वयं छोड़ दी। पर बाहर से साधू-सन्त आते हैं, वे फिर मेरे नियम को तोड़ जाते हैं। उनका यही कहना है शंकर तो विष और नशे का ही देवता है। बिना नशे के कोई उनका ध्यान ही नहीं कर सकता!"

भागा उनकी ओर कातर दृष्टि से देखकर मानो पूछ रही थी—'स्वामी जी, क्या सचमुच में बात ऐसी ही है?'

देवगिरि जी बोले—"देवता पदार्थ में से कुछ लेवें? नहीं,

असम्भव सत्य है यह ! इन भक्तों ने ही उसकी आड़ में अपने पाप छिपाए हैं । देवता क्या, जो मनुष्य नशे की सहायता से ध्यान की साधना करता है वह कदापि सत्य-साधना नहीं करता, वह केवल एक भ्रम का अनुसरण करता है । कुछ देर के लिए अवश्य आत्म-विस्मृति प्राप्त करता है लेकिन सच्ची विस्मृति नहीं है । क्या करूँ कुछ दुर्बलता मेरी भी है । बरसों से तमाखू पीता चला आया हूँ, इसी से अधिकार के साथ किसी को मना नहीं कर सकता । फिर बरसों से चली आई एक परम्परा को तोड़ देना क्या आसान है ?"

कुछ देर चुप रहने पर फिर देवगिरि बोले—"मैं प्रयत्न करूँगा, पहले तमाखू स्वयं छोड़ दूँगा, फिर धूनी के पास कोई भी तमाखू या चरस पीने न पावेगा । जो बिना पिए न रह सकेगा, वह धर्मशाला में जाकर पिए ।"

जैकिशन तब भी गा ही रहा था । देवगिरि ने कुछ देर उसका गीत सुना, फिर कहने लगे—"इसलिए माता मैंने तुमसे कई बार कहा है, यह सारा बाहरी प्रपंच हमारे ही विचारों की छाया है । तुम्हारी मानसिकता से मैं तुम्हारे चारों ओर परिक्रमा कर रहा हूँ और मेरे विचारों की मूर्ति तुम हो । जिस दिन हमारे विचार-क्रम का दूषण स्वच्छ हो जायगा ये बाहर की सारी बाधाएँ अपने-आप मिट जायँगी । केवल मात्र प्रभु के चरणों की शरण ही हमारा लक्ष्य होगा ।"

देवगिरि जी भागा के पास से चले गये । भागा भोजन करने लगी । देवगिरि जी मन्दिर में आये और जैकिशन से कहने लगे—"अब गाते ही रहोगे क्या ? घर जाने की सुधि नहीं है ?"

जैकिशन को अपने नशे में शायद स्वामी जी की आवाज नहीं सुनाई दी । वह गाता रहा । बिना हारमोनियम और तबले के ही, धूनी का चिमटा बजाकर उसने अपने गीत की लय सँभाल रखी थी ।

उसके गीत के समाप्त होने पर स्वामी जी ने फिर उसे याद दिलाई—"जैकिशन, जाओ अब घर जाओ, मैं मन्दिर के बाहरी द्वार पर ताला लगाऊँगा ।"

"ताला चोर के लिए लगाया जाता है । मैं यहाँ हरि-कीर्त्तन कर रहा हूँ । मुझे बाहर नहीं निकाल सकते आप ।"

"यह चरस-कीर्त्तन है, हरि-कीर्त्तन दूसरी चीज़ है।"

"बोल गुरु की जय ! आज तक तो आपने कभी ऐसा नहीं कहा था, फिर क्या बात है ? यह जो कैलास से माई जी आई हैं क्या उन्होंने कोई ऐसा मन्त्र दिया है ?"

"देखो जैकिशन फिर तुम्हारा दिमाग खराब होने लगा और यह सब इसी चरस का प्रताप है ।"

"लेकिन स्वामी जी इसकी दम लगाकर स्वर बिलकुल सही जगह से निकलता है और ताल में एक तिल मात्र का भी फरक नहीं पड़ता । आप भी तो कहते थे दम लगाकर ध्यान में बड़ी मदद मिलती है ।" धीरे-धीरे उनके कान में जैकिशन बोला—"आप भी तो दम लगाते ही हैं ।"

"मैंने छोड़ दिया जैकिशन, तुम्हें मालूम है ।"—बड़ी गम्भीरता से देवगिरि ने कहा ।

"हाँ, धूनी में पब्लिक के साथ बैठकर नहीं पीते आप यह सच है । लेकिन चुपचाप अपने घर के कोने में ? अच्छा एक बात बताइये, माता जी कैलास से आई हैं, ठंड से, एकदम बरफ से—वे दम लगाती हैं या नहीं ?"

"नहीं पीतीं—वे सदाचार को तपस्या की बुनियाद मानती हैं ।"

"ठीक है तब । शंकर जी जो दम लगाते हैं ।"

"शंकर जी का यह चित्र हम-जैसे पापियों ने बनाया ह !"

"अच्छा वे जो डमरू बजाकर ताण्डव-नृत्य करते हैं । मैं कहता हूँ स्वामी जी, बिना दम लगाये कोई ठीक ताल में जम ही नहीं सकता ।"

"यह तुम्हारा बनाया हुआ एक अंध-विश्वास है । नशा कर जो संगीत उपजता है वह असली संगीत नहीं है वह एक व्यसन है । नशा

करके जो ध्यान जमाते हैं, उन्हें सिर्फ एक भ्रम प्राप्त होता है। नशा उतरते ही उनका अधःपतन हो जाता है। असली ध्यान बिना किसी वस्तु की सहायता के प्राप्त होता है, वह स्थायी होता है। नशा एक विकार है उससे मनुष्य को कोई प्रकाश नहीं मिल सकता। उससे किसी योग में सहायता नहीं मिल सकती। गुरु गोरखनाथ ने हर तरह के नशे की बुराई की है और कहा है नशेबाज़ घोर नरक में वास करता है।"—देवगिरि ने कहा।

"नशा खराब है शराब का, भंग और चरस इसको नशा कौन कहता है? इसका नाम विजया है, सिद्धि है। शराब से मनुष्य का तामस बढ़ता है—चरस उसकी सात्विकता को जागरण देता है।"

"यह जो तुम्हारा दिमाग फिर जाता है कभी-कभी, यही क्या तुम्हारी सात्विकता का जागरण है?"

"यह खबर मेरे दुश्मनों ने उड़ाई है। अच्छा महात्मा जी, मैं तमाखू-चरस सब छोड़ देने को तैयार हूँ..."

"अगर ऐसा कर सको तो तुम्हारे भीतर एक नवीन पुरुष उत्पन्न हो जायगा और उससे सारी विभास की घाटी में प्रकाश फैल जायगा। फिर तुम देखोगे तुम्हारी पूजा में कैसा बल प्राप्त होता है।"

"लेकिन धीरे-धीरे छोड़ूँगा।"

"जैसे भी छोड़ो, छोड़ो तिवारी जी।"

"और आपको भी छोड़ना पड़ेगा।"

"चरस छोड़ दी मैंने, तमाखू भी छोड़ दूँगा।"

"अच्छी बात है फिर अब इस समय मैं जाता हूँ। क्या बढ़िया गीत की लहर जम रही थी स्वामी जी आपने सारा तार तोड़ दिया।"

जैकिशन उठकर जाने लगा—"आप चरस-तमाखू छोड़ने-छुड़वाने की बात कर तो रहे हैं। लेकिन मन्दिर में से सारे रंग उड़ जायँगे, कोई नहीं आवेगा यहाँ। सारा सूना पड़ जायगा, सियार बोलने लगेंगे।"

"देवता अपनी महिमा से बड़ा है तुम समझते हो क्या भक्तों से उसकी रौनक बढ़ती है ? और जो तुम समझते हो लोगों के लाए हुए प्रसाद से इस देवगिरि के दिन कटते हैं सो यह भी गलत बात है। मुझे किसी का लालच नहीं है । मैं अपने हाथ के परिश्रम का विश्वास करता हूँ। मैं इतने फल-फूल, साग-सब्जी उपजाता हूँ। क्या सब मेरे ही पेट में जाती है या मैं इन्हें सिक्कों में बदल लेता हूँ ?"

"लेकिन महाराज, यह जो धरती मन्दिर के चारों ओर है, मेरा मतलब है जिसमें आप यह अपने हाथ की कारीगरी दिखाते हैं, यह तो भक्तों की ही दी हुई है । वह चन्द्र-वंश का राजा हो चाहे कर्तृपुर का, था तो वह शिव का ही भक्त ।"

"सारी भूमि भगवान् की है । कहाँ हैं आज वे भगवान् को देने वाले ? न चन्द्र-वंश रहा, न कर्तृपुर के वे राजा ही रहे और इस धरती को देखो यह अभी तक वैसी है । और मैं भी एक दिन इसी के भीतर समा जाऊँगा। लेकिन इस महादेव की मूर्त्ति के ऊपर जो धूल और कीचड़ उसके भक्तों ने जमा कर दी है, मैं उस सबको साफ़ कर ही जाऊँगा ।"—देवगिरि ने मन्दिर की तरफ़ इशारा किया।

"तो इससे क्या लाभ होगा ? धूल-भस्म, ध्वंस-दरिद्रता, श्मशान-गिद्ध-सियार, सर्प-विष, भंग-चरस—यही तो सब शिव है। इस सबको आप साफ़ कर देंगे ?"

"हाँ, इस सबको दूर कर दूँगा, भंग और चरस इसकी जड़ में है—पहले उसे खत्म करूँगा ।"

ताली बजाकर जैकिशन उठ खड़ा हो गया—"तो आपकी सारी मेहनत बेकार हो जायगी । उस सफ़ाई में सारा देवता घुलता का घुल जायगा। स्वामी जी जिस विषमता का नाम शिव है, वह समाप्त हो जायगा ।"

स्वामी जी ने कुछ देर चौंककर उस आधे विक्षिप्त को देखा।

जैकिशन ने अट्टहास कर कहा—"उस शिव की जगह में विष्णु

पैदा हो जायगा। एक तो दो हो जावेंगे और एक का पता ही नहीं रहेगा। फिर बताइए महाराज इस बेकार मेहनत से क्या लाभ होगा ?"

"शिव कैसे हो जावेंगे विष्णु ? उनका भस्मधारी दिगम्बर वेश वैसा ही रहेगा, मुण्डमाला, त्रिशूल-डमरू भी रहेंगे। सर्प-चन्द्रमा सब कुछ रहेंगे।"

"उनकी लाल-लाल आँखें ?"—जैकिशन ने बड़ी तीक्ष्ण दृष्टि से उनकी तरफ़ देखा। अस्पष्ट चाँदनी में उसकी आँखें चमक रही थीं।

देवगिरि ने कुछ सोचा फिर स्थिर-मति से कहा—"नहीं, वे नहीं रहेंगी।"

"तो शिव भी नहीं रहेगा। उन नशीली आँखों पर ही तो उनका रूप टिका है। बुनियाद खिसका दोगे तो मकान कहाँ रहेगा ?"

"मैं दिन-भर का हारा-थका इस समय तुम्हारे कुतर्क का साथ नहीं दे सकता। मैं इस पर विचार करूँगा, तुम्हें भी भगवान् सुमति दे। जाओ, घर जाओ अब, भोजन भी तो करना होगातुम्हें अभी।"—देवगिरि बोले।

"आपने पर्याप्त मिष्टान्न दे दिया है। उसे खाकर एक गिलास चाय पी लूँगा। हो गया बस। और क्या चाहिए ? मेरा भोजन संगीत है। कितना ही गाकर भी तो मेरी उसकी भूख जैसी की तैसी बनी ही रहती है। आपने यहाँ नहीं गाने दिया तो मैं रास्ते भर गाता ही जाऊँगा।"—जैकिशन जाते हुए कहने लगा।

"तुम स्वतन्त्र हो घर-बाहर सभी तरफ़। सिर पर माता-पिता नहीं, आश्रय में स्त्री-पुत्र नहीं।"—कहते हुए देवगिरि जी ने बाहर का द्वार बन्द कर दिया।

जैकिशन गाते-गाते चला—

तू दयाल दीन हौं, तू दानी हौं भिखारी।"

× × ×

दूसरे दिन जब स्वामी जी दिन में भागा के भोजन की व्यवस्था करने के लिए अपने घर का ताला खोल रहे थे, जैकिशन बहकता

हुआ आ पहुँचा "स्वामी जी!"—बड़े धीरज की साँस लेकर उसने उन्हें प्रणाम किया।

"मन्दिर में चलो जैकिशन, मैं अभी आता हूँ।"

"यहीं आपसे कुछ जरूरी काम है।"—वह उनके साथ ही घर के भीतर चला गया।

"मुझे माता जी को भोजन कराना है। तुम चलो मन्दिर में। कुछ खाओगे?"—देवगिरि जी ने पूछा।

"नहीं, मैं भोजन करके आया हूँ. एक जगह न्यौता था। मैंने कल रातभर आपकी बात पर विचार किया।"

"क्या विचार किया?"

"क्या बताऊँ? विचार करते-करते मन को खोदता चला मैं और मेरा एक पाप दृष्टि में आ गया!"—जैकिशन ने बड़े पछतावे के साथ कहा।

ऊपर भागा ने उसकी बोली से जैकिशन को पहचान लिया। वह कान लगाकर सुनने लगी। जब जैकिशन ने अपने पाप का उल्लेख किया तो भागा का मनोयोग और भी बढ़ गया।

"स्वामी जी उसका प्रायश्चित्त बताइये। मैं बड़ा पापी हूँ, मैं फिर उस बच्चे की आवाज़ सुन रहा हूँ। मैं समझता हूँ, जब तक मैं प्रायश्चित्त न कर लूँगा वह आवाज़ मुझे जीने न देगी।"—जैकिशन ने बड़ी कातरता से कहा।

देवगिरि जी उसकी विपन्नता से आकृष्ट हो गये। पहले उन्होंने उसको बहका हुआ समझा पर उसकी ओट में एक गम्भीरता और सत्य दिखाई देने लगा उन्हें। ऊपर भागा ने जब बच्चे की आवाज़ की बात सुनी तो उसकी आँखें भर उठीं।

देवगिरि ने पूछा—"बिना रोग के लक्षण सुने ही कौन तुम्हें ठीक औषधि दे देगा?"

जैकिशन बगलें झाँकने लगा—"होशियार वैद्य रोगी की शक्ल

देखकर ही उसके रोग को जान लेता है। पाप मनुष्य के मुख पर बोलता है। मेरी शकल देखिए मेरी आँखों में नज़र डालिए।"

"तुम्हारी आँखों में चरस के नशे की लाली है।"

"वह तो है ही। लेकिन यह जैकिशन ऐसा न था। वह चरस ध्यान की अधिक गहराई पाने के लिए पीता था। इसी चरस ने उसे बहका दिया महाराज! उसका क्या प्रायश्चित है?"

"कुछ कहो भी तो।"

"धर्म और देवता दोनों का भय था मुझे, आज भी है। बीच ही में ठोकर लग गई। आपके पास मेरा रहस्य सुरक्षित रहेगा, इसी से आया हूँ आपके पास। आप किसी से नहीं कहेंगे न?"

"नहीं कहूँगा।"—देवगिरि ने उसे आश्वासन दिया।

"मैंने एक विधवा को धर्मभ्रष्ट किया है!"

सामने के श्रोता देवगिरि की आँखों में सारा चित्र खुल पड़ा और ऊपर की श्रोता भागा सिर से पैर तक काँप उठी। शीघ्र ही उसके सिर पर का एक बड़ा बोझ हलका पड़ गया। वह रात-दिन यह सोचती थी कि किसी तरह यह बात देवगिरि जी को ज्ञात हो जाती। जब तक उसके मुख में वाणी थी तब तक उसके हृदय में इस सत्य को प्रकट करने का साहस नहीं हुआ था और जब वह मूक हो गई, तो कोई साधन न रहा।

"और जब वह अपने बच्चे को लेकर मेरे पास आई तो मैंने उसका तिरस्कार किया। वह अपमानित होकर लौट गई। बाद को मैंने सुना वह कहीं परदेश को चली गई। लेकिन उसका बच्चा रात-दिन मेरी चेतना के द्वार खटखटाता है। महाराज कोई उपाय बताइए। कैसे होगा प्रायश्चित?"—जैकिशन ने पूछा।

"यह चरस पीना छोड़ दो, और रात-दिन भगवान् से प्रार्थना करो कि वे तुम्हें क्षमा करें।"—देवगिरि को कुछ और याद आई, उन्हें ठीक अवसर मिला, वे बोले—"यह गाना छोड़ दो।"

"गाना छोड़ दूँ महाराज ! गा-गा कर तो मैं भगवान् को अपना पाप सुनाता हूँ । उससे मेरी पीड़ा कम होती है ।"

"लेकिन तुम चरस के वेग में गाते हो । उससे तुम्हारी पीड़ा नहीं पहुँचती भगवान् के कानों में, वह तो रोकर जब आत्म-निवेदन करोगे तब पहुँचेगा ।"

"मैंने सुना है भवगान् गीत से द्रवित होते हैं ।"

"झूठी बात है गीत विलास है—एक बनावट है । आत्मा की असली आवाज है रोना—आँसुओं की झड़ी केवल, ज़ोर से रोना भी नहीं ।"

"ऐसा है क्या ?"

"ऐसा ही है । बच्चा अगर गाता होता तो क्या तुम्हारे कोई असर होता ? उसके रुदन ही ने तुम्हें मर्मांतक पीड़ा पहुँचाई है ।"

ऊपर भागा सोचने लगी—'इसका यह गीत जो मुझे रात-दिन चुभने लगा था शायद अब उसकी समाप्ति हो जायगी ।' उसने मन-ही-मन स्वामी जी के कौशल की प्रशंसा की ।

जैकिशन कुछ विश्वास कर बोला—"आप ठीक कह रहे हैं । लेकिन गाने के कारण मेरी गुज़र होती है । गाना छोड़ दूँगा तो कोई मुझे पूछेगा भी नहीं ।"

"मैं कहता हूँ और भी अधिक तुम्हारा आदर होने लगेगा ।"

"गाना छोड़ दूँ ?"—भविष्य की गहराई में ताकते हुए जैकिशन बोला ।

"हाँ बिलकुल छोड़ दो । तभी मुझे भरोसा होगा कि तुमने चरस भी छोड़ दी ।"

"स्वर के साथ मन्त्र-पाठ भी छोड़ना पड़ेगा ?"

"नहीं, भगवान् के सामने विनम्रता के साथ सब कुछ चलेगा । तुम तो जनता को आकर्षित करने के लिए गाते हो । उसमें तुम्हारा अहंकार व्यक्त होता है आत्म-पीड़ा नहीं ।"

"अच्छी बात है।"

"अभी प्रतिज्ञा करो।"

"भगवान् के सामने मन्दिर में?"

"भगवान् कहाँ नहीं हैं?"

"आप पूजा करने तो वहीं जाते हैं।"—कहकर जैकिशन चला गया।

१३

जैकिशन की पाप-स्वीकृति सुनकर देवगिरि जी ने उससे घृणा नहीं की, बल्कि उनका हृदय उसकी ओर दया में बँध गया। उसके पाप का प्रायश्चित हो, वे निरन्तर इसका विचार करते। एक ओर उनकी जिस करुणा की पात्री भागा बनी थी, दूसरी तरफ़ जैकिशन बना। भागा को उन्होंने जो उपाय बताया, भागा उस पर बिना किसी शंका-विचार के आँख मूँदकर चलने लगी। लेकिन जैकिशन, उसका अहंकार और उसकी दैहिकता में गहरी गड़ी हुई पुरानी आदतें, उसे पश्चात्ताप के मार्ग में चलने नहीं देती थीं।

उस दिन वह फिर देवगिरि जी की शरण में गया। उसे ऐसा विश्वास तो था, वे उसको शान्ति दे सकते हैं, उसकी पीड़ा हर सकते हैं, पर जो कड़वी घूँट उन्होंने उसको बताई थी, वह उसे निगल जाने को तैयार न था।

वह बड़ी विनम्रता से हाथ जोड़कर बोला—"महाराज! मुझे कोई मन्त्र बताइए कि मेरा उपकार हो।"

देवगिरि मुसकराकर कहने लगे—"भाई, तुम्हें इतने स्तोत्र-मन्त्र, पूजा-पाठ कंठस्थ हैं, मैं क्या बताऊँ तुम्हें?"

"नहीं कोई सिद्ध मन्त्र दीजिए जिसका तुरन्त प्रभाव पड़े।"

"धर्म के मार्ग का यह लालच ठीक नहीं है। अपना रास्ता सीधा और सरल होना चाहिए। मार्ग को छोटा करने से अपनी तत्परता और लगन को बढ़ाना उचित है। सिद्ध मन्त्र कोई नहीं है। विशुद्ध भावना से ही उसकी शक्ति बढ़ती है। तुम्हें ये सब बातें मालूम हैं।"—देवगिरि ने कहा।

"हाँ महाराज"!—जैकिशन अपने मन में ढूँढ़ने लगा।

"लेकिन भावना में आगे बढ़ने से पहले तुम्हें सांसारिक बन्धनों को

काटना होगा। तिवाड़ी जी पहले उस मन्त्र को सिद्ध करो। बिना उससे छूटे तुम आत्मा के राज्य में प्रवेश नहीं पा सकते।"

"संगीत से भावना जागती है, सरस्वती को वीणा-पाणि कहा गया है, और नारद जी निरन्तर गीत के साथ ही विचरते रहते हैं। संगीत की धारा में एकाग्रता की एक शक्तिशाली लय है।"

"नारद शुद्ध विचार की प्रेरणा से गाते हैं?"

"मैं क्या गन्दे गाने गाता हूँ।"

"बाहर के शब्द के शुद्ध रहने पर भी हमारे विचारों में विकार सम्भव है।"

"नहीं महाराज!"

"अवश्य जैकिशन, तुमने अपना पाप मुझ पर प्रकट किया है, मैं उसे तुम्हारे साहस की बात कहूँगा। मैं चाहता हूँ तुम्हारा कल्याण हो।"

जैकिशन अपने मन में विचारने लगा। देवगिरि ने उसके पाप की छाया जागृत कर दी थी। वह लज्जित होकर चुप रह गया।

"तुम्हें पापी कहकर तर्क में हरा देना मेरा मतलब नहीं है। तुमने मेरे समीप समस्त कपट छोड़कर आत्मनिवेदन किया है, अतः तुम्हारी भलाई मेरा कर्तव्य हो गया। सच कहो, एक बात पूछता हूँ। तुम जब देवता की भक्ति गाते थे, तब तुम कल्पना के जगत में किसे पुकारते थे?"

"भावना शब्द का अनुकरण नहीं करती क्या?"

"करती क्यों नहीं, पर कभी-कभी मुँह में राम-नाम बगल में छुरी भी रहती है। क्या ऐसा नहीं हुआ? तुमने भगवान् के लिए जो स्वरों का जाल बिछाया था, क्या उसमें एक असहाय नारी नहीं फँस गई?"

"हाँ गुरुदेव!"—"जैकिशन ने देवगिरि के दोनों पैर पकड़ लिये।

"उठो तिवाड़ी जी, अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। मनुष्य ठोकर खाता ही है। उसे स्वभाव बना लेना डूब जाना है। भविष्य में उससे

बचकर चलने वाला ज्ञानी है। इसीलिए मैं तुमसे जनता में गाने के लिए मना करता हूँ। विकार मनुष्य की स्वाभाविकता है। तुम कितनी ही पवित्रता से भगवान् को पुकारो, श्रोताओं के भीतर उससे विकार भी पैदा हो सकता है। मेरा ऐसा निश्चय है, वह अभागिनी पहले तुम्हारी तरफ उस गीत के बन्धन से ही खिंची।"—देवगिरि ने उसे उठा दिया।

"मैं जनता में गाना छोड़ दूँगा, लेकिन मन्दिर के भीतर भगवान् के चरणों में मुझे गाने की आज्ञा दीजिए। गीत के द्वारा अगर मैं अपने प्राणों की पीड़ा बाहर न निकाल सकूँगा तो महाराज मैं मर जाऊँगा। जिस समय वहाँ कोई न होगा, उस समय गाऊँगा। उस बन्द मन्दिर के बाहर मेरी आवाज़ कहीं जा भी न सकेगी।"

"अच्छी बात है, ऐसा कर सकते हो। लेकिन तुम्हें चरस भी तो छोड़नी पड़ेगी। यह मुख्य अवगुण है।"

"उसके लिए प्रयत्न कर रहा हूँ गुरुदेव! धीरे-धीरे उसका आदी हुआ हूँ, धीरे-धीरे ही छोड़ूँगा।"

"धीरज एक बड़ा भारी गुण है, पर वह निर्माण का सहायक है, विध्वंस का नहीं।"

"मुझे एक नई आदत का निर्माण करना है।"

"नहीं, तुम्हें एक गन्दे स्वभाव का विध्वंस करना है। अपना दृष्टिकोण बदलो। एक क्षण में निश्चय करो और दूसरे क्षण प्राणों के प्रण पर जोर लगाकर उस गन्दगी को भूमि पर पटक दो।"—देवगिरि बोले।

"आप आशीर्वाद दें।"

"लेकिन जब तक तुम उस आदत को बड़ी भारी बुराई न समझोगे, छोड़ न सकोगे।"—देवगिरि ने कहा।

"हाँ, ऐसा समझूँगा।"

"बड़ी स्थिरता से कहो, निश्चय के साथ। तुम्हारे इन स्वरों में प्राण नहीं हैं।"

"कहूँगा महाराज !"

देवगिरि कुछ विचारकर बोले—"एक बात और है। मैं समझता हूँ तुम्हें कोई बन्धन चाहिए।"

"कोई व्रत—जैसा माई जी ने ले रक्खा है। गौशाला के किसी कमरे में मुझे भी कैद कर दीजिए, मैं मौन भी ले लूँगा। एक समय कुछ भोजन भी दे दीजिएगा। इतने अतिथि-अभ्यागतों की आप रक्षा करते ही हैं।"

देवगिरि घबराए—"माई जी की बात दूसरी है। मेरा मतलब तुम्हें विवाह के बन्धन में बँध जाने का है। उससे तुम्हारा उत्तरदायित्व बढ़ेगा। तुम्हारी कर्तव्य-साधना और पवित्रता बढ़ जायगी।"

"नहीं महाराज, मैं विवाह नहीं करूँगा।"

"क्यों नहीं करोगे?"

"मेरे माता-पिता होते तो यह बात सम्भव थी। मेरे कौन लड़की देगा?"

"यदि तुम्हारी उच्छृङ्खलता चली जाय तो कोई भी तैयार हो सकता है। और तुम्हारी उच्छृङ्खलता की जड़ भी तुम्हारे इस नशे में जमी हुई है।"

"मैं इसे छोड़ दूँगा। भगवान् मुझ से झूठ न बुलवाएँ। मैं शीघ्र ही इस मन्दिर में भगवान् और आपके सामने उसे छोड़ देने की प्रतिज्ञा करूँगा।"—आवेश में जैकिशन ने कहा।

"अच्छी बात है, अब तुम इसी विचार की प्रतिपालना में जाओ। मैं देवता को भोग लगाता हूँ।"

जैकिशन चला घर को। मन्दिर के आँगन में धूनी पर उसके मित्र जमे हुए थे। जैकिशन को बड़ी उदासीनता से जाता हुआ देख एक भगत बोला—"अरे तिवाड़ी जी, एक दम तो लगाते जाओ, मुँह क्यों लटका रक्खा है?"

दूसरे ने लंबा धुआँ छोड़कर कहा—"शंकर! काँटा लगे न कंकर

मूजी साले को तंगाकर !"

तीसरा साफी झाड़ता हुआ बोला—"लगे दम, मिटे गम ।"

जैकिशन, जैसे चुम्बक पर लोहे का कण खिंच जाता है, उनके बीच में खिंच गया ।

एक उसके कंधे पर हाथ रखकर पूछने लगा—"क्यों भाई, तुम्हारे जोरू न जाँता, फिर कैसी फिकर है ? चेहरा देखकर ऐसा जान पड़ता है, मानो सारे हिमालय पर्वत को तुम्हीं ने धारण कर रक्खा है।'

चिलमवाला दम खींचकर उसे चिलम देते हुए बोला—"लो भगवान् शंकर में अभी लीन हो जाओगे एक ही दम लगाकर ।"

"कहीं कीर्त्तन में भी नहीं दिखाई देते तुम आजकल ?"

"गाना एक विलास है ।"

"कौन कहता है ? थियेटर-सिनेमा के गन्दे गाने वैसे हो सकते हैं । तुम तो कीर्त्तन करनेवाले, प्रभु का यश गाते हो, उसे कौन विलास कहता है । फिर तो सन्ध्या-पूजा सब भोग-विलास ही है ।"

जैकिशन ने चिलम हाथ में ले ली थी । गाने की बुराई कर चुका था वह, पर चरस के लिए एक शब्द भी उसके मुँह से नहीं निकला । उसने खींचकर दम लगाई ।

"कुछ दिन से बाबा जी बड़ी नई-नई बातें सोचने लगे हैं। कभी कहते हैं, मन्दिर में चरस और तमाखू पीना बन्द कर दिया जायगा ।"—एक बोला ।

"यह शिव जी की बूटी, कौन इसे बन्द कर सकता है ? सनातन काल से चली आई है ।"—दूसरे ने कहा ।

जैकिशन के मस्तिष्क में नशा लहराने लगा था । उसका विक्षेप और दुविधा तिरोहित हो गई थी । वह बोला—"मन के ही अन्तर पर बाहरी धरती में हरियाली और सूखा है ।"

उसका एक साथी कहने लगा—"शंकर के प्रताप से ही तो सावन सूखे व भादों हरे ।"

जैकिशन अपने घुटनों पर उँगलियाँ बजाने लगा था। दूसरा साथी बोला—"हो जावे फिर एक भजन।"

जैकिशन ने जीभ दाँतों से दबाकर कहा—"हारमोनियम तो बाबा जी ने ताले में बन्द कर दिया है।"

"तुम्हें हारमोनियम की क्या ज़रूरत है। तुम्हारा स्वर उससे कहीं मधुर है।"

"नहीं, बाबाजी नाराज़ होंगे।"

"क्यों होंगे? क्या शाम को आरती नहीं गाई जाती?"

"अकेले असमय गाने की मनाही है।"—जैकिशन ने कहा।

"क्यों है?"

"शायद माई जी की ध्यान-साधना में कोई विघ्न पड़ता है।" —जैकिशन ने कहा।

धूनी पर की सभा के सभी सदस्य कुछ देर तक मूक रह गये। फिर एक बोला—"यह माई जी बड़ी विचित्र जान पड़ती हैं। अभी कितने दिन और रहेंगी यहाँ?"

"भगवान् जानें।"—कहता हुआ जैकिशन उठ खड़ा हुआ और किसी की कुछ न सुन चला गया।

चला गया वह, उसकी कला को, उसके गीत को जिसे वह अपनी बड़ी भारी सम्पत्ति समझता था देवगिरि जी ने उसे एक पाखण्ड बता दिया। वह उसे आत्मा के मार्ग का एक प्रकाश समझता था, स्वामी जी ने उसे घोर अन्धकार बता दिया। वह गाँव का रास्ता छोड़कर शून्य एकान्त की ओर चलने लगा। विभास नदी पार कर चीड़ के वन में प्रवेश किया उसने।

ऊपर पर्वत के शिखर में भूमिया देवता का मन्दिर था। उससे संयुक्त और भी कई छोटे-छोटे मन्दिर थे। वे सब ग्राम्य-देवता थे। हृदय की जो सरलता उनके पूजनेवालों में थी वही सादगी उन मन्दिरों में भी प्रतिफलित थी।

मन्दिरों के भीतर-बाहर कहीं कोई आडम्बर नहीं। थोड़ा-सा क्षेत्र, ज़रा-सी ऊँचाई। मन्दिर में कोई द्वार नहीं, कहीं पर छत भी नहीं, देवता के ऊपर मुक्त आकाश!

मन्दिर की मूर्ति में कला का कोई सौष्ठव नहीं, किसी सिद्ध कलाकार की कृति नहीं। न जाने कब किसने एक पत्थर उठाकर वहाँ पर रख दिया और उसकी पूजा होने लगी! केवल निराकार को आकार देने के ही उद्देश्य से! और भोले-भाले ग्रामवासी इतने ही से सन्तुष्ट! पूजा के कोई विशेष उपकरण भी नहीं। एक लोहे का त्रिशूल एक कोने में गड़ा हुआ और एक तरफ़ एक लोहे का दीपाधार, तेल और धुएँ से काला।

पर पूजनेवालों की भावना में कोई कसर न थी। देवता, सामग्री और मन्त्र! पूजा के लिए तो केवल भावना ही चाहिए और जो भक्त सच्ची भावना लेकर वहाँ आता था, वह निश्चय ही अपनी मनोकामना पूरी कर जाता था। ऐसा सीधे-सादे ग्रामनिवासियों का विश्वास था।

आज उतने बड़े देवाधिदेव शंकर का विद्रोही होकर जैकिशन उस ग्राम्य-देवता की शरण में चला आया। पूर्व-निश्चित कोई लक्ष्य तो था नहीं उसका। गाने और रोने के लिए उसे एकान्त ने खींचा था, चलते-चलते वह पहाड़ पर चढ़ गया। फिर शिखर पर ग्राम्य-देवता का मन्दिर दिखाई दिया तो वहाँ चला गया।

बाँज के कुछ विशाल पेड़ों के आश्रय में यह मन्दिर था, बाँज के पेड़ों में नवकोमल पत्ते फूट चले थे और पछवा हवा में पुराने पत्ते तैरते हुए गिर रहे थे मानों अनगिनती तितलियाँ उड़ रही थीं। चीड़ के बन से मोहक सुगन्धि पवन के सहारे दिशाओं में व्याप्त हो रही थी। हवा की दिशा के बदल जाने से कभी रसौंत की झाड़ियों के नवपुष्पित स्वर्ण-पुष्प अपना सौरभ फैला रहे थे। पवन-चालित पत्तों की मर्मर ध्वनि पर कभी-कभी मधु-भार से युक्त मक्षिका अपने गुञ्जन की रेखा खींचती हुई चली जा रही थी।

चारों ओर प्रकृति में बढ़ते हुए ग्रीष्म के मध्याह्न की उदासी छाई हुई थी। चढ़ाई पर चढ़ने के अतिरिक्त श्रम से जैकिशन को सूर्य के ताप मे और भी अधिक तीक्ष्णता अनुभव होने लगी थी। उसने देवता को हाथ जोड़कर मन्दिर की परिक्रमा की। फिर बाँज की शीतल छाया पड़े एक चबूतरे पर बैठ गया।

शंकर के मन्दिर में उसके गीत के लिए विरोध जाग पड़ा था। उसके गीत ने उसे पाप की ओर प्रेरित किया था, उसने देवगिरि जी की आज्ञा मान ली और मन्दिर में गाना छोड़ दिया। मन्दिर ही में नहीं उसने गाँव में भी अपना संगीत बन्द कर दिया। पर बिना गाये जैसे उसकी पीड़ा बहुत भारी हो गई थी उसे। उसी को हलका करने चला आया वह वहाँ। उसके गीत को सुननेवाला वहाँ कोई न था। कुछ गायें नीचे वनों में चर रहीं थीं और कुछ पहाड़ी मैनाएँ अपने सित-कत्थई परों के बीच में अपनी पीली चोंचें चमका रही थीं।

जैकिशन गाने लगा, उसने अपने करुण संगीत से सारे वायु-मण्डल को द्रवित कर दिया। वह गाता भी जाता था और रोता भी। एक ही गीत मे रम गया वह। नये-नये तान-पलटों में उसी को घुमाता रहा वह आधे घण्टे तक। निर्भय और निर्बन्ध होकर गा रहा था वह—उस वनदेवता को करुणा जगाने को। मन में सोच रहा था—"क्या देवता मेरे ऊपर कृपा कर कुछ देर के लिए पार्थिव शरीर रखकर नहीं आ सकता?"—नशे की लहरों से आश्वासन मिल रहा था।

अचानक किसी की आहट पर वह चौंक पड़ा। मुँह फिराकर देखा तो वन-देवता के स्थान पर दिखाई दिया आता हुआ शेरुवा लाटा! जैकिशन ने तुरन्त ही अपना गीत तोड़ दिया और ओट से आँखें पोंछ लीं!

"पा-पालागन प-प-पण्डितजी, क्या-क्या त-तकलीफ हो गई?" शेरुवा ने पूछा—"कु-कुछ खो ग-गया? चो-चोरी च-चला गया?"

"नहीं, कुछ नहीं शेरसिंह।"

"फि-फिर इतनी दू-दूर भू-भूमिया के मं-मन्दिर में क्या-क्या फ-फरियाद ले-लेकर आये हो ?"

"कुछ नहीं भाई, ऐसे ही चला आया । क्या यहाँ आने के लिए किसी की मनाही है ? तुम क्यों आये हो ?"

"मैं-मैं तो गा-गाय च-चराने आया हूँ । तु-तुम्हारा गा-गाना प-पहचान ग-गया मैं । रो-रोक क्यों दिया ?"

"अपने आप रुक गया । गीत का एक प्रवाह होता है, जैसे हवा का । वह जब रुक जाती है, तो रुकने का क्या कारण हो सकता है ?"

"आँ-आँसू भी कभी ब-बहते-बहते रुक जा-जाते हैं, ले-लेकिन न-नदी क-कभी नहीं रु-रुकती । वि-विभास छी-छीण हो-हो जाती है, ले-लेकिन क-कभी रु-रुकती नहीं ।"

"हाँ शेरसिंह, तुम ठीक कहते हो ।"

"प-पण्डित जी, ए-एक बात क-कह दूँ, बु-बुरा न मानो ता ।"

"कहो भाई, तुम्हारी बात का क्या बुरा मानना है ? तुम अपने मतलब से तो कुछ कहते नहीं ।"

"तु-तुम शा-शादी क-कर ए-एक प-पण्डितानी ले-ले आओ । मैं-मैं ब-बहुत दि-दिन से सो-सोचता हूँ ।"—शेरुवा भी आकर जैकिशन के निकट बैठ गया ।

"नहीं मित्र ।"—जैकिशन ने उसकी पीठ पर हाथ रक्खा ।

"तु-तुम्हारे सा-सारे दु-दुख दू-दूर हो जा-जावेंगे । फि फिर इ-इतनी दू-दूर गा-गाने को न-नहीं आ-आना पड़ेगा तु-तुम्हें । औ-और रो-रोटी भी प-पकी प-पकाई मि-मिलेंगी । ले-लेकिन—" शेरुवा ने जीभ दाँत से काट ली ।

"लेकिन शेरसिंह···"

शेरुवा ने उन्हें बोलने ही नहीं दिया—"ले-लेकिन ति-तिवा-वाड़ी जी, गा-गाना स-सब ख-खतम हो जायगा । प-पण्डितानी जी गा-गाने नहीं दे-देंगी ।"

"गाना तो वैसे ही खतम हो गया शेरसिंह, अब मैं गाता हूँ, कहाँ हूँ ?"

"क्यों-क्यों नहीं गाते ?"

"गुरुदेव की आज्ञा नहीं है।"—जैकिशन ने सोचा शायद जल्दी में शब्द मुँह से कुछ दूसरा निकल गया है।

"तु-तुम स-सबके गुरु, तु-तुम्हारा गुरु कौन ?"

"देवताओं के भी गुरु होते हैं फिर मैं तो एक पापी मनुष्य हूँ।"—आह भरकर जैकिशन बोला।

"न-नहीं, न-नहीं प-पण्डित जी आ-आप हमारे गु-गुरु हैं।"—शेरुवा उठकर नीची भूमि पर जैकिशन के पैरों के पास बैठ गया—"अ-अब आ-आपकी त-तबियत कै-कैसी है ?"

"मेरी तबियत को कभी कुछ नहीं हुआ। उन दिनों चरस ज्यादे पीने लग गया था, इस कारण कुछ नशा ज्यादे हो गया था। दुनिया की जीभ कौन पकड़ सकता है ?"

"च-चरस से कु-कुछ नहीं होता। ज-जंगल की ज-जड़ी, बू-बूटी इ-इतने सा-साधु स-सन्त उसको पी-पीते हैं औ-और शं-शंकर जी तो रो-रोटी भा-भात भी उसी का खा-खाते हैं।'

"पर मैं इसको छोड़ देने की सोच रहा हूँ।"

"क्यों-क्यों ?"

"ऐसी ही आज्ञा मिली है मुझे।"

"त-तब आ-आप शा-शादी क-करेंगे ज-जरूर ! मैं-मैं भी क-करूँगा। ले-लेकिन बो-बोलनेवाली से प-पटेगी न-नहीं। मैं-मैं एक ही ल-लफ्ज में अ-अटक जा-जाऊँगा औ-और व-वह ल-लफ्जों का ए-एक बो-बोझा मे-मेरे सि-सिर प-पर प-पटक देगी। को-कोई बि-बिल्कुल गूँ-गूँगी मि-मिले तो ठी-ठीक हो। अ-अच्छा ए-एक गी-गीत गा-गा दो।"

"नहीं शेरसिंह, इन दोनों चीजों को छोड़ने आया हूँ मैं आज।"

"गा-गाना भी औ-और च-चरस भी ! न-नहीं प-पण्डित जी दो-दोनों में-में से ए-एक । गा-गाना छोड़ दो-दोगे तो का-काम च-चल जायगा, च-चरस तो त-तभी छू-छूटेगी ज-जब उसका पे-पेड़ ही पै-पैदा न हो ।"

"भूभिया देवता को साक्षी बनाकर आज इन दोनों को ही छोड़ देने को आया हूँ मैं यहाँ । तुम मेरी बाधा होकर कहाँ से आ गये ?"

"य-यहाँ भी तो धू-धूनी है, उ-उसे ज-जलाकर ही तो दे-देवता जा-जायेगा । दि-दियासलाई निकालो, ए-एक ही टु-टुकड़ा है मेरे पा-पास । प-पहले ए-एक दम ल-लगेगी फि-फिर होगी दूसरी बात ।"

शेरुवा की बात मान ली जैकिशन ने । उसने आग जलाई, और मन्दिर के पीछे से वह एक चिलम निकाल लाया । उसे भरा गया और दोनों ने दम लगाई ।

शेरुवा बोला—"अ-अब क-कहो प-पण्डित जी, क्या कहना है तु-तुम्हें ।"

जैकिशन कहने लगा—"दोनों में से छोड़ा किसी को नहीं जायगा । यही द्वैत का प्रश्न है—माया और ब्रह्म का । दोनों में से छूटनेवाला कोई नहीं है, दोनों को एक-दूसरे में मिलाकर दुविधा नष्ट कर दी जायगी—यही अद्वैत-साधना है ।"

"शेरुवा मुँह बनाकर कहने लगा—प-पण्डित जी तु-तुमने बड़ी जो-जोर की संस्कृत बो-बोली, मेरे पल्ले कु-कुछ न-नहीं पड़ा ।"

"गाना चरस की दम के भीतर से पैदा होता है, वह माया है, ब्रह्म के भीतर से ही तो निकली है । उसे बाहर निकलने न देना होगा ब्रह्म में ही लीन रखना होगा ."

"फि-फिर कु-कुछ न-नहीं स-समझा ।"

"गाना छोड़ दूँगा, चरस नहीं ।"

"ज-जय श-शंकर की ! अ-अब स-समझ ग-गया !"

१४

तीन महीने से माता बेटे को टालती रही। 'दीदी अगले महीने आ जायगी।'—बराबर यही आश्वासन देती रही। यद्यपि दीदी के सारे अभाव कुछ भर गये थे, कुछ भूले गये थे, पर उस बालक के मन में एक ऐसी शून्यता रह गई जो न भर सकी, न भूली ही गई। दीदी के विछोह के दिन जैसे-जैसे बढ़ते गये, वह पीड़ा भी फैलती गई!

उस दिन वह बालक पड़ोस के कुछ और बच्चों के साथ खेल रहा था। पनघट पर से लौटती हुई एक औरत ने उससे पूछा—"क्यों भैया, दीदी नहीं आई अभी?"

दीदी की याद आ जाने से उसने खेलना छोड़ दिया और उस स्त्री के निकट बड़े स्नेह से खिंच गया। उसके मन में यह आशा जाग उठी शायद वह उसे दीदी के आने का कोई समाचार देगी। वह चुपचाप उसके मुख की ओर ताकता रहा।

महिला ने फिर पूछा—"क्यों दीदी कब आवेंगी?"

"हाँ,"—ठंडी साँस लेकर बालक बोला—"अभी तक नहीं आईं। अगले महीने आवेंगी, बनारस हैं मामा के यहाँ।"

"अब तो वहाँ बड़ा गरम हो रहा होगा। कभी गरमियों में वे वहाँ रही नहीं।"

बालक उसी समय घर लौट आया और माता से बोला—"माँ, दीदी को बनारस से बुला क्यों नहीं लेतीं? अब वहाँ बहुत गरम हो रहा होगा।"

"कौन कहता है?"

"सुनता हूँ।"

"गरम हो रहा है तो क्या वहाँ लोग नहीं रहते? तुम्हारे मामा कैसे रहते हैं?"

बालक चुप हो गया। फिर एक दिन उसने सुना, दीदी की तबीयत बहुत खराब है। वह रोने लगा—"दीदी को बुला लो माँ, वह यहाँ अच्छी हो जावेगी।"

"बीमारी की हालत में यहाँ कैसे आ सकेगी ? फिर मामा खुद वैद्य हैं।"

फिर कुछ दिन बाद एक दिन माँ रोने लगी। बालक ने कारण पूछा।

उसे बताया गया कि दीदी चल बसी। बालक रोते हुए कहने लगा—"नहीं, दीदी नहीं मरीं। किसी ने तुम्हें झूठी खबर दी है। मैं उन्हें प्यार करता हूँ, वह हरगिज़ मर नहीं सकतीं। वे जरूर एक दिन आवेंगी।"

सारे गाँव में यह खबर फैल गई। जैकिशन ने जब यह सुना तो वह एक क्षण के लिए स्तब्ध रह गया। मन में सोचने लगा—'क्या उसकी मृत्यु का कारण मैं नहीं हूँ ?'

अंतरात्मा की इस आवाज़ को सुनने के लिए उसने एक दम चरस की लगाई। वह आवाज़ दब गई और कोई दूसरा बोल उठा—'भागा के गाँव से चले जाने का कोई कारण तू हो सकता है, जीवन और मृत्यु अपने ही कर्म की है।'

'भागा मर गई ! मर जाने दो उसे, उसका अन्न-जल समाप्त हो गया। और जिस दिन मेरा समाप्त हो जायगा, उस दिन मेरे लिए भी कोई रोनेवाला न होगा।'—जैकिशन चरस की भावना में लहराने लगा—'अपराध किसका है ? क्या मैंने अपने गीत के स्वरों से उसे बहकाया ? वही क्यों बहकी ? करुणा और वैराग्य की छाया पड़े हुए क्या उसके नवीन रूप पर कोई उत्तरदायित्व नहीं है ? दोष है तो दोनों ही का है और अपराधी हैं तो दोनों ही। मैं उसके निर्वास का कारण हुआ तो क्या उसने मुझे भगवान् की भक्ति के पथ से भ्रष्ट नहीं कर दिया ? इस धरती पर इसका न्याय कोई नहीं कर सकता

उस लोक में देखा जायगा।'

वह फिर कुछ देर तक अपने पीतल के लोटे पर पड़े हुए तीव्रतम प्रकाश के पुंज पर दृष्टि गड़ाए कुछ अस्पष्ट और असंबद्ध भावना में डूबा रहा। फिर उधर से नजर हटाकर उसने सिर हिलाया, मानो तमाम पाप-कलंक भूमि पर बिखराकर वह निर्भय, विमुक्त और विशुद्ध हो गया।

× × ×

भागा अपने उस नीरव अन्धकार के एकांत में नियमपूर्वक प्रगति कर रही थी। उसको उसके पाप की स्मृति दिखाने वाला जैकिशन का गीत स्वामी जी की कृपा से बन्द हो गया था। अपने ध्यान और विचारों में सोत्साह वह शान्ति की ज्योति जगा चली थी। अचानक एक दिन फिर उसके मन में भूचाल उठ गया।

देवगिरि स्वामी ने जिस दिन बनारस में भागा की मृत्यु का समाचार सुना, वे संसार में फैले हुए सत्य और मिथ्या के प्रपंच पर कुछ हँसे और कुछ रोए। वे ब्रह्मदत्त जी को याद कर सोचने लगे—'क्या करे वह विचारा पण्डित, सात्विक और पवित्र बनने की निरन्तर चेष्टा में रहता है। पर जब संसार उसे रहने देता? संसर्ग की झूठ में स्वर मिलाकर बोलना ही पड़ा।'

दिन में जब देवगिरि जी भागा का भोजन लेकर उसके पास पहुँचे तो बोले—"आज एक नई खबर सुनने में आई है, बहुत बुरा समाचार है।"

भागा मुँह उदास कर सुनने को व्यग्र खड़ी रह गई।

देवगिरि जी बड़ी गम्भीरता से कहने लगे—"यहाँ जो पण्डित ब्रह्मदत्त जी हैं उनकी कन्या का बनारस में स्वर्ग-वास हो गया।"

भागा आँखें फाड़-फाड़कर देवगिरि जी को देखने लगी बड़े अविश्वास के साथ।

देवगिरि बोले—"नहीं, यह कुछ भी झूठी बात नहीं है। कल ही तो बनारस से कन्या के मामा की चिट्ठी आई है। आस-पास के गाँवों

में सभी को यह बात मालूम है। क्या तुम भी जानती थीं उसे, तुम्हारा भी उससे कोई सम्बन्ध था ?"

भागा के अधरों पर एक मन्द मुस्कान दिखाई पड़ी।

"जाने दो उस बिचारी दुःखिनी को। उसका पुनर्जन्म हो गया। उसकी वेदना में तपस्या उपज गई, उसके उच्छ्वास और क्रंदन में भगवान् का नाम-संकीर्त्तन पैदा हो गया, उसके नारीत्व में देवीत्व और उसकी दैहिकता में आत्मा का जन्म हो गया !"

भागा बड़े ध्यान से यह सब सुन रही थी। अचानक किसी ने बाहर से द्वार खटखटाकर आवाज़ दी—"बाबा जी ! बाबा जी !"

भागा ने उस आवाज़ को पहचाना। बहुत दिनों से सोए हुए स्नेह का एक पवित्र स्पंदन उसके अंग-अंग में सिहर उठा। उसका सारा ध्यान उस द्वार खटखटानेवाले को अपने मानस में मूर्त्तिमंत करने लगा।

भावों के प्रवाह में बाधा पाकर देवगिरि जी कहने लगे—"बड़ी मुश्किल है इस बाबा की। एक क्षण भी कोई चैन से नहीं रहने देता इसे। बगीचे में बाड़ तोड़कर शायद किसी की गाय उजाड़ खाने आ गई !"

बाबा जी ने नीचे के कमरे में जाकर द्वार खोले। देखा, भागा का छोटा भाई। वह कभी-कभी अपने पिता जी के साथ मन्दिर में दर्शन करने आता था। आज उसे अकेला ही देखकर उन्होंने पूछा—"क्यों लल्ला, पिता जी कहाँ हैं ?"

"घर ही पर हैं।"—बालक उनके कमरे के भीतर चला आया था।

"अकेले ही आये हो, क्यों ?"

"कुछ ज़रूरी काम है।"

ऊपर से भागा बहुत दिन के बिछुड़े हुए भाई के शब्दों को बड़ी आकुलता से सुनने लगी।

"क्या ज़रूरी काम है ?"

"बात ऐसी है, बनारस से मामा की चिट्ठी आई है कि मेरी दीदी मर गई। बाबा जी मैं तो उन्हें बहुत प्यार करता हूँ, फिर वह क्यों मर जावेंगी। जाते समय उन्होंने मुझ से कुछ भी नहीं कहा, भेंट भी नहीं की। आप देवता के मन्दिर के पुजारी हैं, सच-झूठ सबका आपको पता है। बता दीजिए, क्या सचमुच मेरी दीदी मर गई?"—बड़ी सरलता से वह बालक बोला।

ऊपर से सुनती हुई उसकी दीदी मन में सोचने लगी—'क्यो न अपने सारे बन्धनों को तोड़कर कह दूँ—'भैया! मैं जीवित ही हूँ, मरी नहीं!' उसी समय पिताजी की क्या प्रतिष्ठा रह जायगी? इस आशंका से उसने अपनी साँस भी रोक ली।

देवगिरि जी के मन में भी एक तूफान-सा उठ गया उस बालक के भोलेपन से। वे सोचने लगे—'इतने छोटे बालक को एक धोखे में रख देना मेरे जैसे बूढ़े और एक देव-मन्दिर के पुजारी के लिए कदापि शोभनीय नहीं।' लेकिन उनके मुँह में ताले पड़ गये और वे बालक के प्रश्न का क्या उत्तर दूँ, इसी दुविधा में पड़े रह गये।

"बाबाजी, आप क्यों चुप हैं? बता दीजिए न मेरी दीदी कहाँ है?"

"मैं एक पापी मनुष्य हूँ, मैं कुछ नहीं बता सकता यह।"

ऊपर भागा, स्वामी जी द्वारा एक बालक का इस प्रकार ठगा जाना सहन न कर सकी। उसने भीतर से साँकल झनझनाई, मालूम नहीं किस मतलब से।

नीचे देवगिरि जी घबराए, बालक का ध्यान बँट गया, उसने पूछा—"ऊपर कौन है?"

"एक माता जी हैं।"

"वे वहाँ क्या कर रही हैं?"

"भगवान् का ध्यान।"

"तब उन्हें जरूर मालूम होगा, उनसे पूछ दीजिए।"

"वे किसी से बातें नहीं करतीं । चलो, मन्दिर में चलें, उनकी पूजा में विघ्न पहुँचता है।"—देवगिरि बालक का हाथ पकड़कर बाहर निकले। उन्होंने द्वार पर ताला दे दिया और बालक के साथ मन्दिर को चले।

भागा कई महीने से एक विचार-क्रम को बढ़ा चली थी उस अन्धकार में। सूर्य की अभाव-साधना में वे उसके ध्यान में उदित होने लगे। उसे ध्वनि बहुत बड़ी बाधा जान पड़ी। जैकिरान का गीत उसके मन को डाँवाँडोल कर गया था। आज भाई उसको पुकारते हुए वहीं आ पहुँचा। भागा मन में सोचने लगी—'सत्य बड़ी विचित्रता है उसे कोई ढक नहीं सकता। इस प्रकार छिपने पर भी वह क्या है जो भाई को यहाँ खींच लाया।' स्थूलता से हटकर भागा सूक्ष्मता की ओर बढ़ने लगी। वह सोचने लगी—'इन्द्रियों के जगत से जो यह विचार का जगत है, वह कहीं अधिक प्रभावशाली जान पड़ता है। स्थूल वस्तु के प्रसरण की एक निश्चित सीमा है, पर विचार के प्रसार की कोई सीमा नहीं है। वह थोड़ी ही देर में कहीं से कहीं जा सकता है। पर उसको समझने के लिए मन का शुद्ध होना जरूरी है।'

देवगिरि ने बालक से कहा—"तुम किसके साथ आए हो। जान पड़ता है अकेले ही आए हो।"

"हाँ।"—बालक ने जवाब दिया।

और तुमने अपने माता-पिता से पूछा भी नहीं? यह बड़ी बुरी बात है, वे तुम्हें खोया समझ इधर-उधर ढूँढ़ते होंगे।"

"मैं भी तो किसी खोये हुए ही को ढूँढ़ने आया हूँ।"

"मौत की गली में खोया हुआ कहीं नहीं मिलता, लल्ला जाओ घर लौट जाओ।"—देवगिरि ने मन्दिर में इधर-उधर देखा कि कोई मिले तो उसके साथ कर दिया जाय।

निराश और निराधार होकर बालक मन्दिर की सीढ़ियों पर बैठ गया। उसने पूछा—"बाबा जी, क्या तुम यह सच ही कह रहे हो,

मुझे ठगाते तो नहीं ?"

देवगिरि ने जैकिशन को देखकर उसे आवाज़ दी—"तिवाड़ी जी, यह ब्रह्मदत्त जी का लड़का घर से बिना पूछे चला आया है। इसके माता-पिता चिन्तित होंगे। तुम घर जा रहे हो न ? इसे भी पहुँचा देना।"

जैकिशन को स्वामी जी की आज्ञा माननी पड़ी। अभी घर को जाना तो न चाहता था वह, पर जाना ही पड़ा। मन्दिर के बाहर आकर उसने बालक से पूछा—"क्यों रग्घू, बिना पूछे क्यों चले आये ?"

"दीदी को ढूँढ़ने आया था।"

बालक के इन शब्दों से जैकिशन के मर्म पर चोट पहुँची। उसने पूछा—"कौन दीदी ?"

"एक ही दीदी तो हैं मेरी। वही जो बनारस में मर गईं।"

"जो मर गया वह फिर कहाँ मिलता है रग्घू ?"

"नहीं मिलता, यही बाबा जी ने भी कहा है।"

"क्या हो गया था तुम्हारी दीदी को ?"

"मुझे नहीं मालूम।"

"यहीं से बीमार थीं क्या ?"

"मैं नहीं जानता।"

"तुम कहाँ थे तब ?"

"सो रहा था।"

"किसके साथ गईं थीं ?"

"मुझे नहीं मालूम !"—एकाएक रग्घू बोला—"मामा जी के साथ गईं थीं।"

"कब आये थे मामा जी ?"

"रात ही में आये थे, रात ही को चले गये।"

"तुमने नहीं देखे ?"

"नहीं।"

रग्घू के प्रकट किये हुए उस सत्य की ओट में जैकिशन को उस रात की वह विभीषिका दिखाई देने लगी। वह निश्चय नहीं कर सका भागा मामा के साथ गई या मामा के यहाँ पहुँचा दी गई। उसकी मृत्यु के समाचार से फिर उसके मन में शंका उठने लगी, भागा बनारस गई भी या नहीं। लेकिन एक बात के लिए वह गत संदेह था कि भागा मर गई। देवीरो की गहराई में डूबी हो या मणिकर्णिका के किनारे जला दी गई हो, भागा अब दिखाई नहीं दी जा सकती।

इसी समय रग्घू ने पूछा—"मरने के बाद क्या कोई लौटकर नहीं आता?"

अटल निश्चय के साथ जैकिशन ने जवाब दिया—"नहीं।"

"दो-चार दिन के लिए भी नहीं?"

"नहीं।"

"आदमी कहाँ चला जाता है?"

"जाता कहाँ है? मिट्टी में मिल जाता है।"

बड़े भय से उस बालक ने इस निर्दय सत्य के व्याख्याता की ओर देखा। इसके बाद बहुत देर तक कोई किसी से नहीं बोला। दोनों अपने-अपने मानसिक चित्रों में उलझते हुए चले गये।

गाँव निकट आ जाने पर जैकिशन ने कहा—"रग्घू तुम्हें भूख लग गई होगी, चलो मेरे घर चलो।"

बालक हिचकिचाया—"नहीं, मुझे भूख नहीं लगी है। मुझे मेरे घर पहुँचा दीजिए।"

"अब थोड़ी ही दूर तो है। चले जाओ रग्घू, रात का समय थोड़े है।"

बालक का मुँह रोने-का-सा हो गया।

जैकिशन के भीतर विकार था और वह सदैव ही ब्रह्मदत्त की छाया बचाकर चलता था। देवगिरि जी ने जो कठिन कर्त्तव्य उसे सौंपा था, उसको पूरा करने को सम्मत वह कभी नहीं था।

"चले जाओ रघू, तुम बड़े बहादुर हो।"

"पिता जी मारेंगे मुझे।"—बालक ने आँसू पोंछते हुए कहा—"मुझे घर तक पहुँचा दो।"

"नहीं मारेंगे। कह देना मन्दिर में दर्शन के लिए गया था।"

"मेरी बात का यकीन नहीं करेंगे। तुम चलकर कह दोगे तो मान जावेंगे। पहुँचा दो मुझे।"—बड़ी करुणापूर्वक बालक बोला।

बालक पर दया आ गई जैकिशन को। वह उसके साथ-साथ चला। थोड़ी देर बाद उसने ब्रह्मदत्त जी को दूर से आते हुए देखकर रघू से कहा—"तुम्हारे पिता जी आ रहे हैं, अब मैं जाता हूँ।"

रघू ने जैकिशन का हाथ पकड़ लिया और बड़े आग्रह से बोला—"नहीं, पिता जी मुझे पीटेंगे, मैं उनके पास नहीं जाऊँगा। मुझे माता जी के पास पहुँचा दो। तुम यहीं ठहरे रहो। मैं पिता जी के निकल जाने तक इन झाड़ियों के पीछे छिप जाता हूँ।"—वह सड़क के नीचे जंगली गुलाब की श्याम-हरित छाया में अदृश्य हो गया।

जैकिशन सड़क की तरफ़ पीठ कर दूर विभास नदी के किनारों पर के खेतों में दृष्टि गड़ाए बैठ गया बड़ी अन्यमनस्कता और वैराग्य को लेकर जैसे कि सड़क और उस पर चलने वालों का उसे कुछ ध्यान ही न हो। ध्यान क्यों नहीं था? कानों से वह सड़क पर आने वाले के एक-एक पग को देख रहा था।

जैकिशन और ब्रह्मदत्त के बीच में कोई शत्रुता नहीं थी, मित्रता भी नहीं थी। दोनों एक-दूसरे से तटस्थ ही रहते थे। सत्य और मिथ्या आवरण या प्रकाश डाल देने से मिटते या खुलते नहीं। स्पष्टता न हो एक आभास उनका निश्चय ही आकाश में मंडलाता रहता है।

जैकिशन सड़क की तरफ़ पीठ किये बैठा था। ब्रह्मदत्त जी निश्चय ही और कोई दिन होता तो अपनी आहट और छाया बचाकर आगे को चल देते, आज दूसरी बात थी। जैकिशन के निकट आकर उन्होंने अपनी उपस्थिति प्रकट की। जब पैरों की चापों से जैकिशन का ध्यान

विभास-पार से न उखड़ा तो उन्होंने खाँसकर अपना अस्तित्व जताया। जैकिशन ने फिर भी गरदन नहीं घुमाई।

अब तो पराजित होकर ब्रह्मदत्त जी को कहना पड़ा—"जैकिशनजी नमस्कार !"

जैकिशन उठ खड़ा हुआ। उसने अपनी आँखों के पाप पर होठों की मुसकान का परदा डालकर कहा—"नमस्कार पंडित जी !"

"तुम नीचे से आ रहे हो क्या ? क्या रघू को भी देखा है कहीं उधर ?"—ब्रह्मदत्त जी ने पूछा।

जैकिशन संकट में पड़ गया। इसका क्या उत्तर दे ? कहने लगा—"पंडित जी आप बड़े ब्राह्मण हैं, क्या जवाब दूँ आपको ?"

"उसके इस असंबद्ध उत्तर की ओर कोई लक्ष्य न कर पंडित जी ने फिर अपने मन की चिन्ता प्रकट की—"रघू तो नहीं देखा तुमने ?"

"यही तो कह रहा हूँ, जो कुछ भी दिखाई देता है सब-का-सब भ्रम ही है श्रीमान् पंडित जी, जो सनातन सत्य है वह किसे दिखाई देता है ?"

पंडित जी फिर बोले—"मेरा मतलब नहीं समझे तुम।"

"मतलब सब लौट-फिरकर एक ही है श्रीमान् जी, मैं, मेरी रोटी मेरी स्त्री, मेरा बेटा।"

"अब तबीयत कैसी है तुम्हारी ? मैंने तो सुना था ठीक हो गई।"

"ऐसी ही है। अपनी भावना है, जो बुरी समझता है, उसके लिए बुरी और जो अच्छी समझता है, उसके लिए ठीक।"

ब्रह्मदत्त जी उसके साथ बातें करना व्यर्थ समझकर चल दिए। उन्हें दूर ओट में पाने पर जैकिशन ने पुकारा—"रघू !"

रघू ने धीरे-धीरे पूछा—"पिताजी गये क्या ?"

"हाँ गये।"

रघू झाड़ी में से बाहर निकल आया—"मेरे बारे में पूछते थे

क्या ?"

"हाँ, तुम्हें ही ढूँढ़ने गये हैं।"

"तुमने क्या जवाब दिया ?"

"मैंने कुछ जवाब नहीं दिया। अब तुम्हारी डर निकल गई, घर अधिक दूर नहीं है। जाओ अब तुम। माता की गोद में सिर छिपा लेना, बीमारी का बहाना कर फिर कोई तुम्हारा कुछ नहीं कर सकेगा।"—जैकिशन ने लौटते हुए कहा।

रग्घू चला गया। उसके मन में माताजी द्वारा की गई वह साँकल की झंकार बड़ी गहरी बस गई थी। एक अपरिचित भाषा की भांति जिसका कोई अर्थ था, लेकिन जो रग्घू की समझ के बाहर था। रग्घू ने फिर साँकल की झंकार को मन में उभारा और उसका मतलब समझने की कोशिश की।

१५

पानसिंह का बेटा धीरे-धीरे फिर स्वस्थ और सबल होता गया। फिर वह कभी बीमार नहीं पड़ा। उसका सुन्दर गौर-उज्ज्वल मुख, सुगठित शरीर, बड़ी-बड़ी आँखें, मनोरम भाव-भंगी जो उसे देखता, मुग्ध हो जाता। सभी यही समझते वह बालक पानसिंह के पुण्यों का उदय है। उस निर्धन के घर में वह बालक एक दिव्य प्रकाश-सा जगमगा उठा।

पानसिंह पहले कुछ महीनों तक कभी-कभी घबरा उठता था, जब वह उस बालक के जन्म के रहस्य पर विचार करता। जंगल में कौन उस बालक को रख गया? आज तक कभी गाँव में कहीं उसकी कोई बात ही नहीं सुनने में आई। कभी-कभी वह उस बालक को देवताओं की कृपा का फल समझता। पहले वह किसी अज्ञात-अपरिचित को उस बालक के पास नहीं जाने देता था।

पानसिंह उस बालक के गुप्त भेद को मन में छिपाए हुए था। पर उसकी स्त्री जब उस बच्चे को दूध पिलाती, जब उसका मुँह धोती, नहलाती, जब उसे लोरी गाकर सुलाती—तब कभी-कभी उसे अज्ञात और अपरिचित-सा समझने लगती। आशंका के लिए उसके कोई आधार था नहीं।

जब वह रोते हुए बालक को शान्त कराने के लिए पुचकारती, अपने अधरों में मधुर हँसी उगाकर उसकी आँखों में अपनी नजर गड़ाती, तो कभी-कभी एक झिझक और लज्जा उसके मन में पैठ जाती और वह चुप-चाप उस बालक को पानसिंह को सौंप आती।

कभी-कभी जब वह उस बालक को दूध पिलाती हुई सो जाती, तो उसे आधी नींद में ऐसा जान पड़ता—मानो वह किसी दूसरे का बालक उसकी छाती से लगा हुआ है, यही नहीं वह उसे आयु में भी

बहुत बड़ा समझती । कभी-कभी विचारों की उलझन में वह उसका मुँह देखती और फिर मन के विद्रोह को दबाकर वह सोचती, नहीं वह उसी का पुत्र है ।

उस बालक का पालन-पोषण करते हुए उसे छः महीने हो गये । लेकिन उसके लिए माता के मन में ममता के बदले एक भय ही बढ़ता गया । यह बात उसको स्वयम् ही कुछ नहीं समझ पड़ी, किसी से कहती क्या ? धीरे-धीरे वह बीमार हो गई । उसे ज्वर रहने लगा । पास-पड़ौस वालों ने कहा—'इसका प्रसूत बिगड़ गया ।' ग्राम-वैद्यों की औषधियाँ चलतीं । कुछ लाभ न हुआ । देवी-देवताओं की पूछ हुई । पूजा-अर्चना की गई, उसने भी कोई फल नहीं दिखाया ।

कुछ दिन तक बिचारी बीमारी को दबाती रही । सुबह से रात तक काम में लगी रहती । धीरे-धीरे पानसिंह बाहर के भारी काम सब उससे छुड़ाने लगा ।

पत्नी बोली—"इधर-उधर चलने-फिरने में तो बीमारी भूली रहती है । एक जगह बँधकर बैठ जाऊँगी तो बीमारी तेज़ी से जाग उठेगी ।"

पानसिंह ने अपनी गोद के बच्चे को भूमि पर रख दिया और पत्नी के सिर से खाद की टोकरी अपने सिर पर ले ली—"कहाँ भूली जा रही है बीमारी ? मैं देख रहा हूँ यह भार तुम्हारे सिर पर असह्य हो उठा है, ऐसी हालत में काम करना ठीक नहीं है । लो, तुम बच्चे को सँभालो ।"

बच्चा रोने लगा था । भूमि पर पड़े-पड़े वह पिता की ओर संकेत कर रहा था । पत्नी बड़ी अरुचि से बालक की ओर बढ़ी, पति निकट ही खाद के ढेर में टोकरी उलटने चला गया ।

पत्नी अपने भाग्य को कोसकर बालक के पास बैठ गई । बालक और भी तेज़ी से रोने लगा । बड़ी अनिच्छा से पत्नी ने बालक को अपनी गोद में लिया ।

पानसिंह खाद की टोकरी उलटकर लौट आया, बोला—"तुम माता हो, ममता को यह अज्ञान बालक भी पहचानता है। तुम्हारी गोद पाते ही इसे चुप हो जाना चाहिए।"

"यह चुप नहीं होता तो क्या मेरा कसूर है ?"

"ज़रा प्रेम से इसको देखो, प्रेम से बोलो। प्रेम से मनुष्य जंगली जानवरों को अपने वश में कर लेता है—यह तो तुम्हारा बच्चा है।"

"अपने बच्चे के रूप में न-जाने कौन दुश्मन पैदा हुआ है यह ?"

"कितना अच्छा लड़का भगवान् ने तुम्हें दिया है। तमाम विभास की घाटी इसकी तारीफ़ करती है। कितना चुप और हँसमुख था यह। तुमने इसको रुला-रुलाकर इसका स्वभाव बिगाड़ दिया है।"

"मैं मर जाती तो अच्छा था।"

"इतना सुन्दर लड़का पाकर तुम्हें उसके पालन-पोषण के बदले जो मर जाने की इच्छा हुई—यह बड़ी बुरी बात है। आज से बाहर के कोई काम नहीं करोगी तुम। मैं सब कर लूँगा। जाओ, इसे ले जाओ। इसे भूख लगी है। दूध रक्खा है—गरम कर पिला देना।" —पानसिंह ने गौशाला के भीतर जाते हुए कहा।

"बासी दूध नहीं पीता यह।"

"फिर ?"

"फिर क्या ? मेरे ही प्राण सोखकर इसे चैन मिलता है।"

पानसिंह डलिया भूमि पर फेंककर पत्नी के पास चला आया और बड़ी विनम्रता से बोला—"बिसन की माँ, यह तुम्हारा बेटा है, तुम्हारे कलेजे का टुकड़ा, इसके लिए ऐसा सोचना यह बड़ी बुरी बात है।"

"और क्या सोचूँ फिर ?"—बड़ी पीड़ा व्यक्त करती हुई वह बोली।

"सोचो, यह हमारे बुढ़ापे का सहारा है। इसका लालन-पालन हमारा धर्म है। यह कोई देवता शाप पाकर तुम्हारी गोद में जन्मा है

रुलाओ मत ज्यादे, नहीं तो इसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जायगा।"
—पानसिंह बोला।

"मुझ से नहीं चुपता यह।"—पत्नी ने अपनी दुर्बलता व्यक्त की।

"लाओ मुझे दो।"—पानसिंह उसे गोद में लेकर चुपाने लगा, पर वह शान्त न हुआ तो उसने कहा—"इसे भूख लगी है। छाती से लगाकर दूध पिलादो।"

पत्नी ने उसे दूध पिलाना आरम्भ किया और वह चुप हो गया। पत्नी उसे लेकर घर चली गई। उसे ज्वर आ गया और वह बच्चे को लेकर सो गई। पानसिंह जब गोबर साफ कर घर पहुँचा तो पत्नी को बुखार में पड़ा पाकर वह चिन्तित होकर बैठ गया।

पानसिंह किसी प्रकार भी उस अबोध बालक और उसकी माता के बीच में सद्‌भावना नहीं उपजा सका। उसकी पत्नी के मन में ऐसी कोई शंका नहीं थी कि वह उसका पुत्र नहीं है। उस दिन जब वह पैदा हुआ था तो उसके मन में उसकी कोई पहचान अंकित नहीं हुई थी, जब वह पुनर्जीवित होकर आया तब भी उसे ऐसा कोई कारण नहीं मिला था।

एक छोटा-सा बालक उसके मन में हिंसा-प्रतिहिंसा ही क्या हो सकती है। लेकिन एक स्वभाव बनने लगा था उसका, उसी के विरुद्ध उसकी माता का विग्रह आरम्भ हो गया। शिशु रोता था माता का दूध पीने को। माता के दूध की कमी थी, और वह किसी तरह मानता ही न था।

यह बालक की प्राकृतिकता ही थी कि उसने जन्म लिया था और वह जीवन के लिए संघर्ष करे। भगवान् ने उसका पहला भोजन माता के स्तन में जमा किया था। पेट भरने के लिए यदि वह माता के स्तन में मुँह मारता है तो उसका क्या अपराध?

उस दिन कढ़ाई में रात के लिए जो गाय का दूध रक्खा था, ज़रा-सी असावधानी से उस पर बिल्ली मुँह मार गई। बिसन पिता

की गोद में खेल रहा था, उसकी माता रोटी पका रही थी।

माता और शिशु के बीच के विद्रोह को सदैव ही पानसिंह न पनपने देने के लिए यत्नशील रहता था। पर बहुत-से छोटे-छोटे कारण बीच में ऐसे आ पड़ते थे जिन पर कोई वश ही नहीं चल सकता था।

बिसन का अन्नप्राशन भी पानसिंह ने जल्दी-से-जल्दी करा दिया था कि वह माता का भार-रूप होकर न रहे। बिल्ली सब दूध पी गई। पानसिंह पड़ौस में से कुछ दूध माँगकर ला सकता था। लेकिन उसने कोई आवश्यकता नहीं समझी। बालक हँस-खेल रहा था। वह रोटी खा पानी पीकर सो जायगा—ऐसी आशा की गई थी। बालक ने ऐसा ही किया भी।

पर आधी रात में उसकी नींद टूट गई, उसने रोना शुरू किया। उसकी माँ ने उसे दो-चार थपकियाँ देकर सुला देना चाहा। इतनी आसानी से सो जाने से उसने इनकार किया वह और भी तीव्र स्वर मे रोने लगा।

पति देवता की भी नींद टूट गई थी, उन्होंने करवट बदलते हुए अपनी राय दी—"मुँह में दूध दे दो।"

पत्नी ने चिढ़कर कहा—"दूध तो बिल्ली पी गई।"

"बिसन की माँ, कसूर बिलकुल नहीं है बिल्ली का, उसे तो दूध पीने के लिए प्रकृति ने पैदा किया है। कसूर है हमारा कि हम अच्छी तरह से दूध की सुरक्षा नहीं कर सके।"

"सभी काम—कहाँ तक कर लूँगी मैं?"

"मैं खुद को बरी नहीं कर रहा हूँ इस असावधानी से। लेकिन मेरा मतलब गाय के दूध से नहीं है। तुम अपना दूध इसके मुँह में दे दो कुछ देर, जब इसकी आँख लगने लगे, तो खींच लेना।"—पानसिंह ने कहा।

बालक रोता ही जा रहा था। पत्नी क्या करती उसको बिसन के मुँह में अपना दूध देना पड़ा। बालक उसे चूसने लगा। माता के स्तन

में दूध था नहीं । जब नहीं निकला तो उसने अपने दोनों मसूढ़ों के बीच में जोर से स्तन दबा दिया । उसके मसूढ़े सख्त हो चले थे । माता चिल्ला उठी, बिसन ने फिर भी स्तन न छोड़ा तो उसने उसके कान ऐंठ दिये ।

चुप हो चुका बालक फिर रोने लगा । पानसिंह की नींद भी खुल गई । उसने घबराकर पूछा—"क्या हो गया ?"

"पूरा राक्षस है यह, मेरा दूध काट लिया ।"

पानसिंह बोला—"हैं ! हैं ! यह क्या कहती हो ? यह देवताओं-का-सा बालक है, सभी के ऐसे विचार हैं ।"

"यह देवताओं-का-सा बालक है ? माता का दूध न पीकर उसका खून चूसनेवाला ? ऐसा तो मनुष्यों के बच्चे भी नहीं करते ।"

बिसन रोते-रोते सिसकने लगा था । पानसिंह उठकर उसके पास गया और बोला—"इतने छोटे बालक पर हाथ चलाते हुए—तुम्हें उस पर दया आनी चाहिए थी । तुम उसकी माँ हो, तुम्हें तो उसके ऊपर कृपालु होना उचित है ।"

"मेरा कोई कुछ नहीं ।"—ऊबकर पत्नी बोली ।

"तुमने नौ महीने इसे पेट में रक्खा है ।"

"नहीं रक्खा ।"

पानसिंह इस उत्तर को सुनकर चकराया । बालक का बीता इतिहास उसे याद पड़ा—"तुम गुस्से में ही यह कह रही हो । नहीं तो सच्चाई का ऐसे कौन निरादर करता है ?"

"हे भगवान् ! मेरे लिए मौत क्यों नहीं भेजते ?"

"लाओ मुझे दो, मैं चुप कराऊँगा इसे ।"—पानसिंह ने बच्चे को अपनी गोद में ले लिया और लोरी गुनगुनाता हुआ उसे चुप कराने लगा ।

उस रात से पानसिंह की पत्नी की तबियत और भी गिरती चली गई । आपस का मन-मुटाव रोग को बढ़ाने में बहुत सफल

होता है। देखा जाय तो मानसिक स्थिति पर भी अनेक अंशों में हमारा स्वास्थ्य ठहरा हुआ है।

और रोज सुबह बुखार रहने पर भी गृहिणी पति से पहले उठ जाती थी। आज उसके पति के साथ कलह हो जाने से भी उठने की इच्छा नहीं हुई। वह पड़ी ही रही अपना रोष साधे।

पति के उठने का समय आया। उसने मुँह उठाकर देखा, सूर्योदय होने को था पर पत्नी पड़ी ही थी। वह उठकर उसके पास गया, पूछा—"क्यों कैसी तबियत है?"

पत्नी ने कोई जवाब नहीं दिया केवल क्षीण स्वर में कराहने लगी।

पानसिंह ने उसके माथे पर हाथ रक्खा—"कुछ कम नहीं हुआ तुम्हारा बुखार?"

"तुम्हारा चूल्हा जलाने के लिए न? बुखार उतारती रही मैं पिछले कई दिनों से लेकिन जान पड़ता है अब यह गाड़ी आगे को न खिंच सकेगी।"—कराहते हुए पत्नी बोली।

"बुखार तो है तुम्हारे। पूजा-पाठ, देवी-देवता, झाड़-फूँक सब करा ही चुका हूँ। दो वैद्यों की दवा भी करा चुका। अब अस्पताल की दवा बाक़ी रह गई। धनसिंह पोस्ट मास्टर को मालूम है एक बुखार तोड़ने की दवा। वह कहता है पार्सल से मँगवा लो। मैं दस जगह से उधार माँगकर भी तुम्हारा इलाज कराऊँगा।"

पत्नी आशा में भरकर उठने लगी। पानसिंह ने उसे रोक दिया—"नहीं, तुमने ठंडे-गरम का कोई परहेज ही नहीं किया, तभी तुम्हारी बीमारी बढ़ी है। मैं खुद बना लूँगा खाना।"

गृहिणी नहीं मानी, बोली—"बच्चे को तो देखना पड़ेगा न। वह मेरे वश का नहीं है। उससे मुझे दूसरे काम ही अच्छे लगते हैं।"

"नहीं, तुम पड़ी रहो। मैं उसे भी देख लूँगा।"

"दोनों काम नहीं हो सकते।"

"हो सकते हैं। अभी बच्चा सोया है, मैं जल्दी से दूध दुह लाता

हूँ, फिर वह आफत मचा देगा ।"—पानसिंह ने बर्त्तन उठाकर ज्योंही दरवाज़ा खोला था कि बच्चा जाग पड़ा और रोने लगा ।

पत्नी उठती हुई बोली—"अब दो काम कैसे करोगे ?"

पानसिंह बोला—"ज़रा देर बच्चे को देखो, मैं अभी दूध दुह लाता हूँ ।"

"नहीं, मैं न देखूँगी इसे । कल रात से मुझे इसे देखकर बड़ा भय लग रहा है ।"

पानसिंह हिचकिचाया—"कैसा भय ?"

"मैंने बड़ा डरावना सपना देखा है कल रात ।"

"सपने की क्या डर ?"—पानसिंह ने बच्चे को उठा लिया ।

"और उस दिन देवता ने क्या कहा था ?"

घबराकर पानसिंह ने कुछ याद किया फिर पूछा—"क्या कहा था ?"

"यही कहा था कि इस बच्चे के साथ एक शैतान की छाया है, और वही शैतान इसकी माँ के लगा है ।"

"मैं उसकी पूजा तो दे चुका फिर अब कैसी डर ?"

"पूजा दे चुके तो फिर बीमारी क्यों नहीं गई मेरी ? ज़रूर कोई गलती हो गई ।"

"देवता से फिर पूछा जा सकता है । इस समय तो थोड़ी देर के लिए देखो तुम इसे ।"

पानसिंह के हाथ से दूध का बर्त्तन लेकर वह बोली—"तुम देखो इसे, मैं दूध दुह लाती हूँ ।"

पानसिंह ने दूध का बर्त्तन छीन लिया उसके हाथ से, बोला—"नहीं, तुमने कल कुछ खाया भी नहीं था, मुझे ही जाने दो । बच्चे को पकड़ो । थोड़ी देर में मैं अभी आ पहुँचूँगा ।"

"नहीं, इसे नहीं पकड़ूँगी ।"

"क्यों नहीं पकड़ोगी ?"

"यह मेरा बच्चा नहीं है।"

पानसिंह ने गोद में लिये हुए बच्चे को उसे दिखाते हुए कहा—"यह तुम्हारा बच्चा नहीं है ? कितना सुन्दर और श्रेष्ठ ! तुम इसके लिए ऐसे कठोर लफ्ज़ बोल रही हो ? बड़े-से-बड़ा मनुष्य भी इसे पुत्र कहकर अपना सौभाग्य समझेगा। तुम्हारे कौन सी कुमति हुई है ? यह तुम्हारा ही बच्चा है।"

"नहीं, नहीं, मेरा बच्चा मर गया था।"

"भगवान् ने इसे फिर जिला दिया।"

"नहीं, न मालूम तुम किस शैतान को इसके प्राणों में भरकर ले आए। मैं नहीं देखूँगी इसे, इसी ने मेरी यह दशा कर दी। मैं रह भी न सकूँगी इसके साथ।" —गृहिणी ने कहा।

पानसिंह घबरा उठा, दूध का बर्तन और बच्चा दोनों को लेकर वह गौशाला को चला गया और किसी तरह दूध दुहकर घर लौटा।

घर लौटकर देखा तो द्वार बन्द। पानसिंह ने समझा बुखार के सबब से हवा के बचाव के लिए ऐसे ही ढक रक्खे होंगे। लेकिन जब उसने उन्हें खोलने की कोशिश की तो भीतर से साँकल चढ़ी हुई पाई। द्वार खटखटाए, कोई उत्तर नहीं मिला। अब तो पानसिंह ने चिन्तित होकर कई आवाजें दीं—"बिसनसिंह की माँ ! बिसन की माँ !" फिर भी कोई जवाब नहीं मिला।

घबराकर भागा पानसिंह। पास-पड़ौस से दो-तीन आदमियों को बुला लाया। बच्चा रोने लगा उसकी भाग-दौड़ से। अपने बच्चे ही को चुप कराने में रह गया।

एक पड़ौसी के पूछने पर पानसिंह ने बताया—"अकेली बिसन की माँ है भीतर, वह बीमार है।"

पड़ौसी ने ज़ोर-ज़ोर से दरवाज़े खटखटाए जब भीतर से कोई जवाब न मिला तो बोला—"शायद बुखार में बेहोश है।"

पानसिंह ने जवाब दिया—"दरवाज़ा लगाने को होश था, खोलने

को नहीं, अभी आधे घण्टे की तो बात है।"

दूसरा पीछे की तरफ़ देख-भालकर आया—"पीछे की खिड़की भी बन्द है।"

दुमंजिले पर की बात है। पिछले कमरे के एक भाग में रसोईघर था और एक हिस्से में सोने का कमरा। एक पड़ौसी सीढ़ी लगाकर ऊपर खिड़की पर चढ़ गया। वह भी भीतर से बन्द थी। लेकिन उसके छेद से उसने भीतर जो दृश्य देखा, उसे देखकर वह सीढ़ी पर गिरते-गिरते बाल-बाल बचा।

वह हाँफता हुआ पानसिंह के पास आया और बोला—"पानसिंह! बड़ी भयानक खबर है।"

"क्या हुआ?"

"तुम्हारी बहू गले में फाँसी लगाकर झूल रही है।"

"बचाओ! बचाओ! शायद अब भी कुछ हो सके!!"—पानसिंह बावला-सा दरवाजा तोड़ने लगा।

"ऐसे नहीं खुलेगा, लोहार को बुलाओ।"—एक ने कहा।

एक आदमी लोहार को बुलाने गया। दूसरा कहने लगा—"जब ऐसी बात है तो पटवारी जी या प्रधान जी को भी बुलाना जरूरी है। नहीं तो और कोई आफ़त न आ जाय।"

"लोहार के आने तक वह मर जायगी।"—पानसिंह ने बाहर पड़ी हुई एक कुल्हाड़ी उठाई और दरवाज़े पर मारने लगा।

पड़ौसी कहने लगा—"बच्चे को चुप कराओ। तुम्हारी ऐसी हरकत देखकर वह और भी ज़ोर से रो रहा है। पटवारी जी को आने दो। इस तरह घटनास्थल की शक्ल बदल देने पर न जाने कौन सी आफ़त आ जाय तुम्हारे सिर पर।"

"मेरी घरवाली मर रही है और तुम क़ानून की टाँग पकड़ने को कहते हो?"—बिगड़कर पानसिंह बोला—"मैं कैसे इस बच्चे की परवरिश करूँगा?"

"उस वक़्त नहीं सोचा तुमने यह जब घरवाली से लड़ाई की।" —वह मनुष्य भी कुछ तैश में आकर कहने लगा।

पानसिंह कुछ नम्र पड़कर उस मनुष्य के पास आकर बोला— "मेरे ऊपर मुसीबत आई है और तुम ऐसे कड़ुवे बोल मुँह से निकाल रहे हो ? किस बाबत की मैंने उससे लड़ाई ?"

"यह तो तुम ही अच्छी तरह बता सकते हो, मैं क्या जानूँ ? लेकिन पूछ लो किसी से, बिना लड़ाई-झगड़े के कौन इस तरह मरना पसन्द करता है ?"

"कोई लड़ाई नहीं की।"—बड़ी अधीनता से पानसिंह बोला— "छः महीने से मैं उसके इलाज के पीछे परेशान हूँ। और वह अपनी बीमारी से उकता उठी थी। दिन-रात की पीड़ा सह न सकी और इस तरह उसने छुट्टी पाई।"—उसने बच्चे को गोद में उठा लिया और उसे चुप कराने लगा।

किसी ने कहा—"इसे भूख लगी है। कुछ खिलाया भी या नहीं ?'

पानसिंह को अब याद आई—"कहाँ से, इसके खाने का ही डौल करने—दूध दुहने—को तो गया था, उतनी ही देर में ये करम होगये।"

तमाशा देखनेवाले बहुत-से आकर इकट्ठा हो गये थे। बहुतों ने उस बालक को चुप कराने की चेष्टा की पर वह चुप नहीं हुआ। एक को पानसिंह ने वह दुहा हुआ दूध गरम कर ला देने को कहा। वह दूध लेकर चला गया।

× × ×

जैकिशन अपने कमरे में चरस की दम लगाकर सुप्रभात का उदय कर रहा था। उसने पानसिंह के आँगन में कुछ चहल-पहल-सी सुनी। उसने कोई ध्यान नहीं दिया। एक बालक के रुदन पर उसकी कल्पना जमने लगी।

उसे बहुत-सी पुरानी बातें याद आने लगीं। एक बालक के रोने की आवाज़ कितने ही दिनों तक सोते-जागते उसका गला दबाती थी।

उस रोने की आवाज़ पर उसका मन ठहर गया। बालक निरन्तर रो ही रहा था। जैकिशन अपने मन को दूसरी ओर लगाने की चेष्टा करने लगा, पर उस बच्चे का रोना उसके हृदय में गहरा गड़ गया था। उसने गीत गाकर उसकी गहराई में उस रुदन को डुबा देना चाहा, वह और भी अधिक ज्वलन्त हो उठा।

जैकिशन ने कमरा बन्द किया और पानसिंह के घर की तरफ़ चला गया। उसने किसी से कुछ पूछा नहीं, भीड़ का कारण क्या है, क्यों लोग एक गम्भीरता से जमा हैं, इन बातों से कोई मतलब नहीं रक्खा, वह सीधा उस रोते हुए बालक के पास गया।

पानसिंह हाथ जोड़कर कहने लगा—"धन्य हैं पण्डितजी, आप पुण्यात्मा हैं न! इतनी देर से यह बालक किसी से चुप नहीं हुआ, आपने छूते ही इसे चुप कर दिया। क्या करूँ मेरे सिर पर वज्र गिर पड़ा है?"

"क्या हो गया?"

"इसकी माँ ने फाँसी खा ली।"

जैकिशन घबराकर उस बालक को ज़मीन पर रखने लगा। लोग कहने लगे—"यह क्या करते हो? तुम्हारी गोद में वह चुप हो रहा है।"

"मुझे संध्या-पूजा करनी है।"

"इस बच्चे को माँ की छूत नहीं लगी है पण्डितजी। संकट के समय किसी के काम आना बहुत बड़ी पूजा है।"—एक पड़ौसी बोला—"अभी भूखा है यह इसके दूध के आ जाने तक पकड़े रहो इसे।"

इतने ही में प्रधान जी और सड़सी-हथौड़ा लिये गाँव का लोहार आ पहुँचा। लोहार द्वार खोलने लगा।

"प्रधान जी ने पूछा—"क्यों पानसिंह, क्या बात हो गई?"

"क्या बताऊँ सरकार! इसकी माँ बहुत दिनों से बीमार चली आ रही थी। अभी कल तक तो घर के तमाम काम किये थे उसने। मैं दूध दुहने गया था, बस इतनी ही देर में, लौटकर आया तो दरवाज़ा बन्द!"

लोहार ने द्वार खोल दिया। प्रधानजी दो-तीन बड़े-बूढ़े लोगों को लेकर घर के भीतर घुसे। वह भयानक दृश्य देखकर सबके रोंगटे खड़े हो गये। ऊपर धन्नी में बँधी रस्सी से वह लटक रही थी। उसके पैरों के पास दो खाली मिट्टी के तेल के टीन पड़े हुए थे। लोगों ने यह अन्दाज लगाया धन्नी में रस्सी बाँधकर वह मिट्टी के तेल के टीनों को एक के ऊपर दूसरे को रख उन पर चढ़ी। फन्दा गले में लेकर उसने दोनों टीनों को ठोकर मारकर गिरा दिया और फाँसी पर झूल गई!

उसके मुख से रक्त और फेन निकल रहा था, एक अत्यन्त भयानक मृत्यु के समय की वेदना उसके मुख में छायी हुई थी, उसे देखने का किसी को साहस ही नहीं होता था।

एक सन्दूक को वहाँ पर खिसकाया गया, उसके ऊपर टीन रख-कर पानसिंह ने पत्नी के गले की फाँसी काटी और उसे एक-दो मनुष्य की सहायता से उसने भूमि पर लिटा दिया।

प्रधानजी ने हाथ से नहीं छुआ उसे, उन्होंने पानसिंह से उसकी नाड़ी और हृदय की गति देखने को कहा।

पानसिंह बोला—"नहीं महाराज, यह तो बिलकुल ठण्डी पड़ गई!"

"भगवान् की इच्छा! क्या कुमति सवार हुई इसके?"—प्रधान-जी बोले।

"बचनेवाली तो नहीं थी यह, आज न मरती दस-बीस दिन बाद मरती।"—पानसिंह बोला।

सब लोग बाहर को चल दिये। जैकिशन ने बिसन को दूध पिला दिया था, वह उसके साथ खेल रहा था। लोगों को बाहर आता देख-कर जैकिशन ने पूछा—"क्या हाल है?"

"ठण्डी हो गई!"—पानसिंह बोला—"आखिरी बार इसको भी दिखादें उसका मुख?"

जैकिशन बोला—"जरूर! जरूर!"—उसने उस बच्चे को भूमि पर रख दिया, और चुपचाप खिसक गया।

बालक उसकी ओर देखता हुआ रोने लगा।

१६

पत्नी के आशौच के दिन पूरे किये पानसिंह ने। ताज़ा घाव था, सहन कर लिया किसी तरह, कुछ मित्र-सम्बन्धियों ने मदद कर दी। रोज़ ही कोई किसी की कहाँ तक सहायता कर सकता है? सभी को अपनी-अपनी गाड़ी खींचनी है।

बारहवें दिन आशौच के घेरे से पानसिंह बाहर आया फिर संसार-प्रवेश के लिए। उसने देखा, छः महीने का बालक बिसन उसका एक अविभक्त अंग होकर रह गया था। गाय-बछिया, खेती-पाती, चौका-बासन, लकड़ी-घास—सभी कुछ आकर उसके सिर पर पड़ गया था। क्या करे और क्या न करे? बिसन को छाती से लगाए कहाँ जाए और कहाँ न जाए वह? किसके द्वार पर जाकर उसे सौंप आये? बड़ी मुश्किल में पड़ गया पानसिंह।

जिस पत्नी का संसार-सुख बढ़ाने के लिए वह अपने मरे हुए पुत्र को जिला लाया था वह चल दी। गृह और गृहस्थी लुप्त हो गई, दीपक की प्रतिष्ठा कहाँ पर हो? वह प्रकाशित किसे करे? वह अपने मन में सोचने लगा, भगवान् ठीक ही करते हैं। मनुष्य के दुख वहीं से बढ़ने आरम्भ होते हैं, जहाँ पर से वह ईश्वर के न्याय में कुछ कसर समझकर काट-छाँट करता है। बच्चा मर गया था, वह ईश्वर की इच्छा थी, मैं उसे जिलाने वाला कौन था? मैंने अपने को धोखा दिया, अपनी पत्नी को—सारी दुनिया को अँधेरे में रख दिया। क्या जरूरत थी ऐसा करने की? किसी का जीवित बालक मिल गया था तो उसे उसी की सचाई में मुझे संसार को दिखाना था।

बिसन उसकी गोद में खेल रहा था। पानसिंह को देखकर एक स्वर्गीय हँसी उसके मुख-मंडल पर नाचने लगी। वह बालक से कहने लगा—"बिसन, भोले-भाले बिसन, मैंने तुम्हें भी धोखे में रख दिया।

तुम जिसकी गोद में बैठे हो, जिसे तुम्हें पिता कहना सिखाया जा रहा है, यह सरासर बेईमानी है।"

बालक उसके हाथ में ताली बजा रहा था, पानसिंह के इस सत्य को समझ सकने की मति कहाँ उसमें ? उसने मन में सोचा—'तो क्यों न अब इस सचाई को लोगों में फैला दूँ ? ··इससे क्या होगा। विभास की घाटी में तो किसी का बालक नहीं खोया है। कौन आकर इसे मेरे पास से माँग ले जावेगा ?···कुछ ही दिन का तो कष्ट है, फिर यह बालक मेरा सहायक न हो जावेगा। रह गई इसके मेरे सम्बन्ध की सो यहाँ इस संसार में कौन किसका है ? मानने ही के तो सारे नाते हैं।'

पानसिंह उसे लिये-लिये फिरने लगा। किसी-न-किसी प्रकार सभी काम कर लिये उसने। बालक जब सोया तभी उसने खाना बनाया तथा घर के और दूसरे काम किये। किसी प्रकार वह दिन समाप्त किया उसने।

दूसरे दिन बच्चा उससे भी पहले उठ गया। मुँह-हाथ धोकर कैसे दूध दुह लावे वह बड़ी मुश्किल में पड़ा। उसने बच्चे को उसकी डलिया में लिटा दिया, वह रोने लगा, उसने कोई चिन्ता नहीं की। अभी उसके हाथ-पैरों में बल आया नहीं था। कहीं उसके गिरने-पड़ने की डर तो थी नहीं। पानसिंह दरवाजा बन्द कर उसमें साँकल देकर चला गया।

वह जंगल गया फिर मुँह-हाथ धो दूध दुहने के उपरान्त वह घर को लौटा। रोते-रोते बच्चे का गला सूख गया था। पानसिंह ने अपनी उस कठोरता को धिक्कार दिया और पुत्र के सम्बन्ध की इस पर-भावना को कोसा। उसने चार-छै चम्मच वह धारोष्ण दूध उस बच्चे के कण्ठ में डाला। बच्चे ने शान्ति की साँस ली।

पानसिंह ने बच्चे का मुँह चूम लिया—"नहीं बिसन, अब आगे से ऐसा पाप कदापि नहीं करूँगा। तुम मेरे ही पुत्र हो मेरे हृदय के टुकड़े। मत समझो कि तुम मातृ-हीन हो। मैं तुम्हारे माता और पिता

दोनों का स्नेह तुम्हें दूँगा।"

उसने कुछ सोचा, बच्चे को गोद में उठा लिया और दूध की बाल्टी उठाकर सीधा जैकिशन के घर चला गया।

जैकिशन नहाने-धोने को मन्दिर को जाने ही वाला था कि पानसिंह ने उसके पास पहुँचकर कहा—"पालागे पण्डित जी।"

"सुखी रहो, सुबह-ही-सुबह कैसे आ पहुँचे?"

"महाराज, इस बालक को आपकी प्रीति हो गई है।"

"मुझ से गाँव भर के बालक प्रीति करते हैं, क्योंकि मैं भी उन्हें प्यार करता हूँ।"

"लेकिन यह बच्चा तो दूर ही से आपको देखकर प्रसन्न हो जाता है।"

"मतलब क्या है तुम्हारा?"

"मतलब यही है आपको सुबह चाय के लिए दूध चाहिए, मैं रोज़ दे जाऊँगा पाव-भर।"

"तुम दे तो जाओगे, पैसा कौन देगा महीने में?"

"आप ब्राह्मण देवता हैं आपको दिया हुआ कभी व्यर्थ नहीं जावेगा। लोग कैसा-कैसा दान दक्षिणा में दे देते हैं। मुझ से इतना ही सही।"

"तेरी इच्छा है भाई, नहीं तो मुझे थोड़ा-सा चाहिए, रोज़ कहीं-न-कहीं से आ ही जाता है।"

"एक कष्ट करना पड़ेगा आपको। जितनी देर मैं दूध लगाऊँ उतनी देर इस छोकरे की आपको देख-रेख कर देनी होगी।"

"यह बात है! तुम्हारी असहाय अवस्था देखकर मुझे दया आनी ही चाहिए। लेकिन अगर तुमने दूध दुहने के बाद, गोठ का गोबर भी साफ करना शुरू किया, फिर आग जलाकर खाने का भी नम्बर लगाया तो मेरी संध्या-पूजा सब बह जायगी विभास के पानी में।"—जैकिशन बोला।

"नहीं महाराज, ऐसा हरगिज न होगा। कभी हो जाय तो आप

बच्चे को मेरे पास पटक जायँ।"—जैकिशन ने बच्चे को गोद में लेकर कहा—"क्यों रे बिसन ! माँ को भेज दिया तूने घर को।"

"इसने क्या भेजा महाराज, भगवान् ने बुला लिया।"

"अच्छा जाओ तुम, दस मिनट में आ जाना।"

पानसिंह ने हँसते हुए दूध की बाल्टी खोली—"आज तो दूध दुह लाया हूँ पण्डितजी, अपना बर्त्तन दीजिए।"

जैकिशन ने एक लोटा उसके सामने रक्खा—"दो छटाँक से ज्यादे मत रखना।"

पानसिंह ने आध सेर से कुछ कम नहीं उँड़ेला उस लोटे में।

जैकिशन बोला—"बड़ी मुश्किल में पड़ गये भाई तुम। गृहस्थी का ऐसा ही जंजाल है। इसीलिए मैंने विवाह को दूर ही से नमस्कार कर दिया है। लेकिन दूध तो दुह लिया पर खाना कैसे बनाओगे? और अब कैसे करोगे मजूरी?"

"जब सो जायगा तभी चूल्हा जलाऊँगा। मजूरी का भगवान् मालिक है।"—पानसिंह ने बिसन को अपनी गोद में ले लिया।

वह दिन भी कट गया किसी तरह। पानसिंह ने मन में सोचा—'सभी दिन कट जाते हैं कभी सुख और कभी दुख की भावना में।'

दूसरी सुबह हुई। एक भरोसा उसके मन में जाग उठा था। सारी मुश्किल उसको सुबह दूध दुहने की थी। उसके लिए जैकिशन तैयार हो गया था, उसे भी लाभ था। पानसिंह बिसन को लेकर जैकिशन को दे आया और स्वयम् दूध दुहने चला गया।

जैकिशन चरस की दम लगा रहा था, पानसिंह बालक को पास ही बिछी हुई एक दरी पर सुलाकर चला गया था। बच्चा हाथ-पैर मारते हुए कह रहा था—"आऽहो, आऽघ्घू !"

जैकिशन बोला मन में—"वाह ! क्या उमर है ? बस यही विस्मृति है जो कुछ है फिर तो जहाँ-जहाँ ज्ञान बढ़ता गया भ्रमों के पहाड़ ऊँचे होते गये मन में।"

बिसन ने फिर कहा—"आऽघ्घूँ ! आऽहोऽ "

"कितना सुरीला कंठ है उसके ! कैसी सुन्दर रूप की रेखाएँ ! भगवान् की बड़ी विचित्र माया है । अच्छे कर्म होंगे पानसिंह के, लेकिन इसकी पत्नी बड़ी विनम्र और लक्ष्मी थी । उसके अभाव में अब क्या जाने क्या हो इस बिचारे का !"

"आऽघ्घूँ ! आऽहोऽ !"

"अगर इसे गाना सिखाया जाय तो यह जल्दी सीख लेगा । अभी जो अक्षर इसके अधरों में फूट निकले हैं, उनमें स्वरों का विस्तार जान पड़ता है । अभी उमर ही क्या है इसकी ?"

बच्चा किसी की वाणी या मुख का कोई सहारा न पाकर घबराने लगा, उसने मुँह बनाया और रोने लगा—"ऊँऽऊँऽऊँऽ···"

जैकिशन ने चिलम रख दी । उसका नशा शिखर पर पहुँच गया था । वह बच्चे को सम्बोधित कर बोला—"कोई बात नहीं कर रहा है तू उसे ? इसी से नाराज़ हो गये ।" उसने पुचकारा उसे । एक गीत का टुकड़ा गाया । बच्चा चुप हो गया ।

जैकिशन ने उसे दरी पर से उठाया—"कैसा मूर्ख है यह पानसिंह, केवल दरी में सुला गया तुम्हें । कठोर भूमि गड़ती होती तुम्हारे कोमल शरीर में !"

जैकिशन ने बालक को अपने बिस्तर में सुला दिया । उसका नशा जमा नहीं था । बच्चे के मिजाज़ को गीत और आवाज़ का सहारा देते हुए वह चिलम भरने लगा ।

वैसा ही जैकिशन था वैसा ही था पानसिंह । दोनों में से किसी को भी बच्चे की आदतों का ज्ञान नहीं था । पण्डित जी ने जैसे ही चिलम में कोयले भरकर उसमें साफी लपेटी और लम्बे धुएँ की रेखा खींचने ही को थे कि बिसन ने उनके बिस्तर में टट्टी और पेशाब दोनों कर दिये ।

आवाज़ें जो सुनीं तो जैकिशन ने चिलम भूमि पर रखकर बालक के

वहाँ से हटाया। बिस्तर उठाया, बाहर झाड़कर फेंक दिया। गीत के आकाश से जमीन पर पटका जाकर बालक रोने लगा। जैकिशन की पुचकारों के बदले में अब उसे झिड़कियाँ मिलने लगी थीं।

"बड़ा गंद और बदतमीज़ छोकरा है रे तू! मैंने तेरा आदर किया और तूने यह लात मारी मेरे! चल निकल!"—जैकिशन ने उसकी दोनों बाहें पकड़ लीं और उसके रोने के स्वर में अपने रोष की ताल देता हुआ वह तुरन्त ही पानसिंह की गौशाला में जा पहुँचा।

दूध दुहते-दुहते पानसिंह मन में सोच रहा था—'आदमी जैसे चाहे वैसे अपना काम कर सकता है, सिर्फ हिम्मत होनी चाहिए उसमें। रास्ते अपने-आप निकल आते हैं। बच्चे की डलिया खेतों पर ही ले जाऊँगा, एक शीशी में दूध भी। रबड़ वाली शीशी कहीं मिल जाती तो बिसन कभी रबड़ चूसता और कभी सोता रहता और मैं हर वक़्त खेतों में लोहा घुमाता रहता।' इतने ही में उसने एक बच्चे के रोने की आवाज़ सुनी। अपना बच्चा कभी नहीं समझा था उसने, वही निकला!

आधी कढ़ी हुई दूध की धार वहीं पर छोड़कर पानसिंह दूध का बर्त्तन हाथ में लिये गौशाला के बाहर निकल आया।

"लो अपने चिरंजीव को लो। यह तो बड़ा खराब आदमी है, मैं तो इसे कुछ और समझता था।"

दूध का बर्त्तन ठिकाने से रख पानसिंह बिसन को पकड़ने के लिए आगे बढ़ते हुए बोला—"क्या कर दिया इसने?"

टट्टी करदी मेरे बिस्तर में।"—बिगड़कर जैकिशन ने कहा।

हाथ जोड़ता हुआ जैकिशन बोला—"मुझे माफी दीजिये पण्डित जी! मैं सब धो दूँगा अभी।"—जैकिशन बिसन को लेकर उसकी टाँगें धोने लगा।

"नहीं जी, इस गंदगी से बचने के लिए ही तो मैंने अपना विवाह नहीं किया। और तुमने वही मेरे सिर पर लाद दी।"—जैकिशन रो

के आवेश में बोला।

"नहीं महाराज ! कल से ऐसा नहीं होगा। मैं इसे टट्टी-पेशाब कराकर ही आपको दे जाऊँगा।"

"नहीं जी, मैंने क्या ठेका लिया है?"

"परोपकार महाराज ! उसका भी आप ख्याल नहीं करें तो आधा सेर दूध दे जाऊँगा आपको रोज़ाना।"

"मुझे नहीं चाहिए तुम्हारा दूध, माफ करो। मैं संध्या-पूजा वाला आदमी—मेरा सारा घर अपवित्र कर दिया।"

"मैं सारा घर लीप दूँगा।"—पानसिंह ने बच्चे को धोया, फिर एक मैले अँगोछे से पोंछकर कहा—"थोड़ी देर इसे पकड़ दीजिए महाराज ! मैं दूध पूरा कर लेता हूँ।

"नहीं पानसिंह, यह रो रहा है। मुझ से चुप न होगा।"

"रोने दीजिए।"

"नहीं भाई, तुम जो यह इसके माता-पिता का पद मेरे गले पर मँढ़ने लगे हो यह न होगा मुझ से।"

"आपका बिस्तर धोना है, घर लीपना है।"

जैकिशन को फिर दया आ गई उस बालक का करुण रोदन सुनकर। उसने उसे गोद में ले लिया। थोड़ी देर में वह चुप भी हो गया। वह उसे लेकर अपने घर चला गया।

पानसिंह ने बाकी दूध दुहा। घर जाकर आग सुलगाई, दूध गरम किया। आधा सेर जैकिशन के लिए ले गया और बाकी रख दिया

जैकिशन बोला—"बड़ी देर लगाई तुमने?"

"दूध गरम किया महाराज! यह बालक देखता हूँ आपसे बड़ प्रसन्न रहता है। बिस्तर कहाँ है मैं धो देता हूँ लाइये।"

"और एक घण्टे तक मुझे इसकी चाकरी करनी पड़ेगी क्या?"—जैकिशन बोला।

"बिना खाये-पिये आपकी गोद में यह जितना खुश हो जाता है

मैंने इसे इतना इसकी माँ के पास भी नहीं देखा।"

"पूर्व-जन्म के संस्कार हैं। हम एक ही घर में पैदा होकर भी एक-दूसरे से स्नेह नहीं कर सकते। कौन जानता है, पूर्व-जन्म के दो शत्रु भी इस जन्म में दो सहोदर भाई होकर पैदा हो सकते हैं।"—जैकिशन ने कहा।

"पण्डित जी, इसकी माँ यही कहती थी कि यह उसका बेटा नहीं कोई दुश्मन उसकी कोख से पैदा हुआ है।"

"देर मत करो अब। दो कंबल हैं बाहर उन्हें नदी में लेजाकर धो लाओ। मेरे पूजा-पाठ को दोपहर कर दी तुमने।"

"अभी लौट आता हूँ पण्डित जी।"

पानसिंह नदी में कंबल धोने चला गया। जैकिशन उस बालक के साथ खेलने लगा। कुछ देर बाद उसने फिर रोना शुरू किया। उस बालक के रुदन में उसके मन में पुरानी कटु स्मृतियाँ जागने लगीं। वह बालक को चुप कराने लगा।

× × ×

कुछ दिन बाद पानसिंह को जैकिशन की इस दुर्बलता का ज्ञान हो गया। नित्य ही सुबह जब वह बिसन को शौच कराकर जैकिशन के पास ले जाता तब जैकिशन प्रायः रोज ही उसको लेने से इनकार करता, पर जब पानसिंह उसे डलिया में रखकर गौशाला के बराबर डाल देता और वह जोर-जोर से रोना शुरू कर देता तो उसे आना ही पड़ता।

ऊब उठा पानसिंह उस जिन्दगी से। जहाँ जाता वह बिसन को लेकर जाता। कभी डलिया में, कभी गोद में और कभी पीठ में बाँधकर ले जाता ताकि काम करने के लिए उसके दोनों हाथ खाली रहें। खेत, खलिहान, गौशाला, नदी, पनचक्की—सभी स्थानों में उसे लिये-लिये घूमता।

कोई उसकी तपस्या की तारीफ करता। कोई उसके दुर्भाग्य पर दुःख प्रकट करता। कोई कहता मातृ-हीन से पितृ-हीन अच्छा है। कोई पानसिंह से उस बालक को किसी रिश्तेदार के यहाँ पहुँचा देने की रा

ेता। कोई उसे दूसरा विवाह कर लेने की राय देता।

एक दिन पानसिंह बिसन को लेकर मन्दिर में पहुँच गया देवगिरि जी के पास कुछ अपना कष्ट कहने और कुछ उनके उपदेश सुनने को।

देवगिरि जी ने जब उस बालक को देखा तो उन्होंने फिर बार-बार पानसिंह के मुख की ओर दृष्टि की। पानसिंह उनके इस दृष्टि-पात से घबरा उठा, बोला—"महाराज, तब आप ही ने इसे मरते हुए बचाया था। इसकी माँ को कोई नहीं बचा सका।"

"मारने-बचाने की शक्ति मनुष्यों में नहीं है।"

"हाँ महाराज !"

"पानसिंह, मैं तुम्हें एक सच्चा-सीधा मनुष्य समझता हूँ। एक बात का उत्तर दोगे ?"

घबरा उठा पानसिंह, बगलें झाँकते हुए उसने हाथ जोड़कर कहा—"हाँ महाराज, मैं तो आपका सेवक हूँ।"

"पानसिंह, यह लड़का···"—देवगिरि जी ने इतना ही प्रश्न कर उस भोले-भाले किसान के मुख पर उड़ती हुई भावना का सूक्ष्म निरीक्षण करना शुरू किया।

काँपती हुई आवाज़ में पानसिंह ने पूछा—"हाँ महाराज ! यह लड़का ?"

"यह लड़का क्या सचमुच में तुम्हारा ही है ?"

पानसिंह भौंचक्का रहकर चुपचाप उनके मुख को ताकता रह गया।

देवगिरि जी फिर बोले—"तुम्हारा लड़का मर गया था पानसिंह, हम सब भी एक दिन मर जाने वाले हैं, सिर्फ़ सचाई-एक मात्र सचाई—ही हमारी सम्पत्ति है। यह देवता का मन्दिर है पानसिंह ! देवता को कोई नहीं ठग सकता। बताओ यह किसका बेटा है ?"

"मैं नहीं जानता महाराज ! जिस दिन मेरा बेटा मरा उसी दिन मैंने इसे एक लाल कंबल में लिपटा हुआ पाया।"

देवगिरि जी ने बड़े सन्तोष की साँस लेकर पानसिंह के सिर पर हाथ रक्खा—"शाबाश पानसिंह !"

पानसिंह ने उनके पैरों पर गिरकर कहा—"मेरी लाज आपके हाथ है।"

"पानसिंह, मैं किसी से कुछ नहीं कहूँगा।"—देवगिरि ने आश्वासन दिया।

१७

पानसिंह के मुख से उस विचित्र सत्य का भेद पाकर देवगिरि जी को एक ऐसी चीज़ अनायास ही मिल गई, जिसे वे बहुत दिनों से ढूँढ़ रहे थे। वे प्रसन्न हो उठे कि इस समाचार से भागा सुखी हो सकेगी। फिर सोचने लगे, इससे उसकी साधना में विघ्न तो न हो जायगा ? वह आत्मा की खोज में संसार का त्याग कर आगे बढ़ रही है, इस सम्बन्ध को बताकर क्या उसकी प्रगति का मार्ग बँट न जायगा ?

फिर उन्होंने विचार किया, यह सम्बन्ध उसकी चेतना में मौजूद है ही, पर है उलझा और खोया हुआ। क्या उसको स्पष्ट कर देने से उसकी मति को विश्राम और शान्ति न मिलेगी ? बाहर के मार्गों की स्पष्टता से ही भीतर के मार्ग खुलते हैं। अतः उन्होंने भागा को इस समाचार से अवगत करा देना अपना कर्त्तव्य समझा।

रात को जब वे उसके भोजन की व्यवस्था करने उसके कमरे में गये तो कहने लगे—"माता जी, आप बहुत दिनों से जिसे खोज रही थीं, मैं उसे ढूँढ़ लाया हूँ।"

भागा के मुख-मण्डल में एक जिज्ञासा चमक उठी। वह अपने मौन-व्रत में बहुत प्रौढ़ हो चुकी थी। अगर आरम्भ के दिन होते तो ज़रूर वह भूल जाती और तुरन्त ही उसके मुख से निकल पड़ता—"क्या चीज़ स्वामी जी !"

स्वामी जी भी धीरे-धीरे वह सत्य उस पर खोलना चाहते थे उन्होंने उसके मुख-मण्डल की रेखाओं को ध्यान से देखा। उनसे यः स्पष्ट था कि वह बिना शब्दों के प्रकाश के ही तमाम सत्य उस पर खुल चुका है।

उसने बड़ी करुणापूर्ण दृष्टि से आकाश की ओर देखा। मानं उसने भगवान् के प्रति कृतज्ञता प्रकट की देवगिरि जी ने फिर स्पर्श

ओर देखा। उसके भाव या चेष्टाओं में उनकी बात को सुनने की कोई आकुलता या अधीरता नहीं थी।

देवगिरि जी कुछ उसके निकट बढ़कर धीरे-धीरे बोले—"मुझे तुम्हारे बेटे का पता लग गया है।"

भागा के मुख पर एक झिझक और एक ग्लानि-सी प्रकट हुई और शायद देवगिरि जी अपने मन में सोचने लगे—क्यों मैंने यह ख़बर इसे दी? लेकिन तुरन्त ही उन्होंने अपनी भावना का रंग बदलकर कहा—"क्यों यह समाचार तुम्हारी प्रसन्नता का कारण न हो? वह बालक जो तुम्हारे अंग-प्रत्यंग का ही टुकड़ा है उसके मिल जाने की ख़ुशी क्या छोटी है?"

भागा के मन में प्रसन्नता की लहर चमक उठी। वह अस्थिर होकर कमरे में इधर-उधर जाने लगी। मानो उसके अधरों पर उस बालक के सम्बन्ध में सैकड़ों प्रश्न आकर जमा हो गये थे।

देवगिरि बोले—"तल्ले देवद के पानसिंह ने अपने मरे बेटे को तुम्हारे बालक की सहायता से ही जिलाया।"

भागा के मुख में एक उलझन दिखाई दी।

देवगिरि ने समझाया—"श्मशान में पानसिंह अपने मरे बेटे को दबाने गया था, वहाँ तुम्हारे बालक को पाकर उसने अपने बेटे का पुनर्जीवन मशहूर कर दिया। इसी कारण आज तक तुम्हारे बेटे के मृत्यु या जीवन की कोई बात गाँव में किसी को मालूम न हो सकी।"

भागा बहुत स्वस्थ होकर देवगिरि के समीप बैठ गई। ऐसा जान पड़ा मानो एक भारी बोझ उसके सिर से च्युत होकर ज़मीन पर गिर पड़ा हो।

देवगिरि कहने लगे—"हाल ही में पानसिंह की बहू का स्वर्गवास हो गया है। बिचारा बड़ी मुश्किल में पड़ गया! कैसे बेचारे की गृहस्थी चले? कौन उस बालक की परवरिश करे?"

भागा अपने मन में सोचने लगी, स्वामी जी यहीं उसे ले आवे

तो क्या हानि थी ? अचानक उसने अपनी विचारधारा को मोड़ लिया—नहीं, यहाँ क्या आवश्यकता है उसकी ? लोग क्या कहेंगे ? कहीं उसके कारण मेरा भेद न खुल जाय। भागा ने यह सोचकर अपने उस विचार को मिटा दिया।

देवगिरि बोले—"तुम योग-मार्ग की साधिका हो, तुम्हें इन सांसारिक बन्धनों से क्या मतलब ? यदि मेरी स्त्री जीवित होती तो मैं अवश्य ले आता उसे। मुझे उन दोनों को देखकर बड़ी दया आती है।"

भागा मन में सोचने लगी न जाने क्या-क्या ?

देवगिरि उसे सांत्वना देते हुए कहने लगे—"मैं एक दिन ले आऊँगा उसे यहाँ। और भी कभी-कभी ले आने की व्यवस्था करूँगा।"

भागा किंकर्त्तव्य-विमूढ़-सी स्वामी जी को देखती रह गई।

उन्होंने फिर कहा—"कुछ वर्ष बाद जब वह बड़ा हो जायगा, तब तो मैं उसे यहीं किसी काम में नियुक्त कर लूँगा।"

भागा ने मन में सोचा—"पानसिंह का बेटा—मैं उसके लिए क्यों कोई मोह बढ़ाऊँ ? दूर ही से यह जानकर कि वह प्रसन्न है, मैं खुश हूँ।"

देवगिरि जी बड़ी देर तक भागा के निकट बैठे रहे उस बालक के सम्बन्ध में उसका अभिमत जानने के लिए। पर भागा ने स्पष्ट रीति से कुछ भी व्यक्त नहीं किया और स्वामी जी यह नहीं जान सके कि उसने आरम्भ में पुत्र के लिए जो व्यग्रता दिखाई थी वह अभी उसमें मौजूद है या नहीं ?

देवगिरि जी वहाँ से उठे और अपने कमरे को चले गये। भागा ने अपने कमरे के द्वार बन्द कर लिये। वह भोजन करने बैठी। उससे खाया ही नहीं गया। एक विचित्र तृप्ति अनुभव हो उठी उसके। वह उसके पुत्र के कुशल-समाचार की प्राप्ति थी।

खाते-खाते वह सोच रही थी—'मैं उसकी माँ मौजूद हूँ, लेकिन वह मातृ-हीन बना दिया गया है। अपराध मेरा ही है, जब मैंने ही

उसकी ममता छोड़ दी तो फिर कहाँ मिलती उसे कोई माता ? पानसिंह पाल न सकेगा उसे। मैंने गुरुदेव से क्यों नहीं कह दिया कि उस बालक को यहाँ अपने पास रख लें कुछ दिन।' उसे अपने मौन टूट जाने की चिन्ता हुई। वह विचारने लगी कागज़-कलम मँगाकर उससे व्यक्त कर दूँ।

दूसरे दिन यही करना निश्चय किया उसने। पर उसके हृदय में स्नेह का समुद्र उमड़ने लगा। उसे फिर-फिर चिन्ता होने लगी, पानसिंह उस फूल से बालक का पालन न कर सकेगा, निश्चय वह उसे मार डालेगा। काली-काली भयानक तसवीरें उस बालक के अमंगल की उसे दिखाई देने लगीं। वह अधीर हो उठी और उसी समय देवगिरि जी पर यह प्रकट करने को व्यग्र हो उठी कि वे उसके बच्चे को उसी समय पानसिंह के यहाँ से मँगवा दें।

दूसरे ही क्षण फिर उसने विचारा—'यह तो बड़ी बेतुकी बात होगी! पानसिंह ऐसी रात्रि के समय उस बालक को यहाँ बुलवा लेने में न जाने क्या समझे?'

कुछ देर तक खिंची रहने पर फिर उस बालक की ममता उसके जाग उठी और वह सोचने लगी—'स्वामी जी पर अभी क्यों न प्रकट कर दूँ। वे कल सुबह होते ही पानसिंह को यहाँ बुलवा लें और किसी उपाय से मेरे बच्चे को यहाँ रख लें। वह तो इस बात से बड़ा प्रसन्न हो जायगा।'

वह उसी समय तैयार हो गई। उसने खा-पीकर हाथ धोये। फिर उसने साँकल को झंकारित किया।

स्वामी जी समझे, कोई ज़रूरी चीज़ रह गई, शायद पानी समाप्त हो गया। वे एक लोटे में पानी लेकर ऊपर गये। भागा के मुख पर मन्द हँसी प्रकट हुई।

स्वामी जी ने कहा—"तो क्या दीपक में तेल नहीं है, तुम्हारे रामायण के पाठ के लिए?"

भागा फिर हँसने लगी।

"फिर क्या चाहिए ? दवात-कलम है तुम्हारे पास, एक कागज़ में लिखकर प्रकट करो, इससे तुम्हारे व्रत को कोई हानि नहीं पहुँचेगी।"

पर भागा सम्मत न हुई। देवगिरि ने पूछा—"फिर क्या कहना चाहती हो तुम ?"

भागा के उस लहर की उत्तुंगता गिर पड़ी थी। संसार और समाज का भ्रम-विक्षेप फिर उसकी अंतरात्मा में गूँज उठा। उसने देवगिरि की ओर बड़ी करुणा से देख दोनों हाथ जोड़ सिर हिलाकर व्यक्त किया—"नहीं।"

लेकिन देवगिरि ने सोचा—'आज तक ऐसा कभी नहीं हुआ, ज़रूर कोई-न-कोई बात है। ज़रूर किसी संकोच के कारण यह नहीं कहना चाहती हैं।' प्रकट में वे फिर बोले—"क्या तुम पानसिंह के बालक के बारे में कुछ कहना चाहती थीं ?"

"नहीं।"—भागा ने सिर हिलाकर व्यक्त किया।

"फिर क्या बात है ?"—देवगिरि ने चारों ओर देखते हुए सोचकर पूछा।

उसने फिर सिर हिलाकर बताया—"नहीं।"

देवगिरि को संतोष नहीं हुआ। वे बोले—"यह दवात-कलम तुम्हें मैंने इसलिए दी है कि तुम अपनी कठिनाइयों को व्यक्त करो। तुमने आज तक कभी इसका उपयोग नहीं किया। मैं फिर कहता हूँ कि इससे तुम्हारे व्रत को कोई हानि न पहुँचेगी।"

भागा को कट्टरता का विश्वास था। वह समझती थी ज़रूर इस लिखे हुए अक्षरों में मन की जटिल भावनाओं का प्रकाशन भी उसके व्रत को तोड़ देगा। इसके सिवा वह क्या लिखे, यह नहीं समझ पड़ा उसे। उस बालक को यहाँ मँगाकर वह फिर पुरानी पीड़ा में जाग उठेगी। इसलिए उसे दूर ही से उस बालक की मंगल-कामना करनी चाहिए। भागा ने फिर निश्चयात्मक रीति से सिर हिलाकर प्रकट किया—"नहीं।"

देवगिरि जी क्या करते फिर अपने कमरे में उतर गये। बड़ी देर तक भागा के उस विचित्र व्यवहार पर विचार करते रहे।

पानसिंह रोज़ सुबह बिसन को जैकिशन के पास पहुँचा देता। दूध दुह चुकने पर वह फिर उसे अपने घर उठा ले जाता। पाँच-सात दिन तक यह क्रम ठीक-ठीक चलता रहा। तब उस दिन फिर एक बाधा आ गई। पानसिंह बिसन को जैकिशन के पास पहुँचा गया था।

जैकिशन उसे गोद में लेकर उसके साथ बातें करता हुआ सोच रहा था—"कितनी सुन्दर यह बाल-काल की अवस्था है! संसार के तमाम विकारों से विहीन यह बालक क्यों नहीं किसी के घर का प्रदीप हो। मैं भी चाहता मेरा यह सूना घर उसकी क्रीड़ा से मुखरित होता, उसकी मुसकान से प्रतिध्वनित होता।"

वह इसी विचार में था कि अचानक बिसन ने टट्टी कर दी। यह बड़े सौभाग्य की बात थी—उसने उसे एक कपड़े में लपेटकर ले रक्खा था। फिर भी जैकिशन नाराज़ होकर बोला—"मूर्ख कहीं का, मुझे धोखा दे गया और बिना इसे टट्टी कराये ही ले आया।"

जैकिशन उसी वक़्त गौशाला में जा पहुँचा और गौशाला के बाहर बिसन को भूमि पर रखकर बोला—"पानसिंह, तुम ठगते हो मुझे, मूर्ख बनाते हो। यह नहीं होगा। बिना इसे टट्टी कराये ही मुझे दे गये।"

पानसिंह तुरन्त ही बाहर निकलकर बोला—"नहीं पण्डितजी, इसकी तबियत ख़राब है। रात में भी एक दफे इसे दस्त हुआ था।"

"जब यह बात थी तो तुम्हें मुझे बताना था।"

"यह हँसने-खेलने लग गया था, मैं समझा ठीक हो गया।"

"अब ग़फ़लत मत करो। रुलाओ मत इसे। मुझे बच्चों का रोना सुनकर बड़ा बुरा लगता है। इसकी दवा करो, अभी जाओ। मन्दिर में बाबाजी के पास जाओ, वह अच्छे अनुभवी हैं और उनमें बड़ी दया है।"—जैकिशन बोला।

"थोड़ा-सा दूध और रह गया है।"

"छोड़ दो उस दूध को बछड़े के लिए।"

परन्तु पानसिंह न माना। फिर दूध दुहने के लिए गौशाला के भीतर चला गया।

जैकिशन जाते हुए बोला—"मुझे नहीं चाहिए तुम्हारा दूध, मैं चला।"

पानसिंह जैकिशन के स्वभाव से अवगत हो गया था। वह दूध दुहता रहा।

जैकिशन थोड़ी दूर जाकर लौट आया और ताली बजाकर बच्चे को चुप कराने लगा। बच्चा न माना और रोता ही रहा। जैकिशन बिगड़कर कहने लगा—"तुम बड़े पत्थर-हृदय के हो! अगर तुम्हारा यही हाल रहा तो यह फूल-सा बच्चा हरगिज तुम्हारे पास नहीं ठहरा रह सकेगा। मेरी बात को लिख लो—यह जहाँ से आया है, वहीं चला जायगा।"

"आया पण्डितजी, अब कुछ भी देर नहीं है।"

लेकिन पानसिंह अपने ही समय से आया और तब तक जैकिशन जा भी नहीं सका भले ही उसके रोष का पारा सहनशीलता की सीमा पार कर चुका था। जब पानसिंह आया तो जैकिशन कहने लगा—"तुम मनुष्य नहीं राक्षस हो, भगवान् जरूर तुम्हें कोई दण्ड देगा। कल से इस बालक को मत लाना मेरे पास।"

पानसिंह हाथ जोड़ता हुआ बोला—"क्या करूँ इसे मन्दिर में ले जाऊँ बाबाजी के पास?"

"मैं कुछ नहीं जानता। तुम मनुष्यता नहीं रखते। तुम से कोई बात करना बुद्धिमानी नहीं।"

"कसूर माफ़ कर दीजिए पण्डितजी।"—पानसिंह जैकिशन के पैर छूकर बोला

जैकिशन फिर कोई उत्तर न देकर चला गया। पानसिंह ने बच्चे

को धोकर उसके कपड़े बदले। दूध को घर में सँभालकर वह सीधा बच्चे को देवगिरि जी के पास ले गया।

दूर ही से उसे आता हुआ देखकर देवगिरि मन में बोले—"यह फिर बच्चे को लेकर आ पहुँचा। हमारे विचारों में बड़ा आकर्षण है। मैं इस बालक के बारे में सोच रहा था और शायद माताजी भी इसी के लिए रात भर चिन्ता में रहीं।"

पानसिंह ने बाबाजी के पैर छूकर कहा—"महाराज! यह बालक बीमार हो गया।"

"क्या हो गया?"—देवगिरि जी ने बालक का मुँह खोला।

"शायद इसके पेट में पीड़ा है, दस्त भी हो चुके हैं सुबह से दो-तीन बार। बुखार तो नहीं है?"

देवगिरि जी ने उसे देखा-भाला फिर कहने लगे—"पानसिंह, तुम से न हो सकेगा इस बालक का पालन-पोषण। ठीक समय पर उचित परिमाण में तुम इसे भोजन नहीं दे सके।"

"दूध और भात ठीक ही समय पर खिलाया था महाराज! रात को सोते-सोते यह एक-दो बार चौंक उठा और रोने लगा था। कुछ भूत-बाधा तो नहीं हो गई? भभूत लगा दीजिए महाराज!"

"भभूत तो शाम को लगाया जायगा।"

"फिर इस समय कोई दवा दे दीजिए। शाम को फिर ले आऊँगा।"

"ठण्डी हवा चल रही है। लाने ले-जाने में इसकी तबियत के ज्यादे खराब हो जाने का अंदेशा है।"

"मुझे तो घर पर कई काम करने हैं। गाय-बछियें बँधी हैं। दूध गरम न करूँगा तो फट जायगा। मैंने भी अभी कुछ नहीं खाया है। खेती-पाती ऐसे ही चौपट हो रही है।"

"बच्चे को यहीं छोड़ जाओ। माता जी को दिखाऊँगा। उन्हें भी बच्चों की बीमारी की भली पहचान है। भभूत लगा देंगी और

आवश्यकता होगी तो भाड़ भी देंगी।"

पानसिंह बहुत प्रसन्न हो उठा । वह ऐसा ही तो चाहता था। कहने लगा—"आप लोगों को कष्ट तो होगा।"

"देखो भाई, दूसरे का दुख दूर करने का व्रत ही जन्म की सफलता है।"—देवगिरि ने बिसन को अपनी गोद में ले लिया और बोले—"शाम को आना।"

पानसिंह देवगिरि के पैर छूकर चला गया। देवगिरि उस बालक को रोता देख समझे उसे भूख लगी है। उन्होंने उसे कुछ दूध पिलाया। बालक खेलने लगा। स्वामी जी ने उसे मन्दिर में घुमाया, वह ठीक हो गया।

नहा-धोकर जैकिशन आ पहुँचा मन्दिर में संध्या करने। स्वामी जी की गोद में बिसन को हँसता-खेलता पाकर बोला—"यह पानसिंह का लड़का है ?"

स्वामी जी मुस्कराए।

जैकिशन बोला—"यह तो बीमार था।"

देवगिरि ने कहा—" इस वक़्त तो ठीक है।"

"क्या ठीक है ? कोई ठीक नहीं इसकी महाराज, टट्टी-पेशाब कर आपको अपवित्र कर देगा कहीं।"

बिसन ने जैकिशन को देखा और उसकी आवाज़ पहचानी तो उसकी गोद में जाने को मचलने लगा।

जैकिशन दूर हटते हुए बोला—"नहीं, मैं अभी स्नान कर आया हूँ।"

देवगिरि बोले—"यदि यह तुम्हारा बालक होता तो क्या होत जैकिशन ?"

"इसकी माँ सँभालती इसे।"

"और अगर दुर्भाग्य से वह मर गई होती तो...?"

"इसीलिए तो मैंने अभी तक विवाह नहीं किया महाराज !" —जैकिशन बोला।

"नहीं जैकिशन, तुम्हें ऐसे सजीव देवत्व की अवहेलना नहीं करनी चाहिए।"

१८

जैकिशन संध्या करने चला गया। बालक को उसका वह तिरस्कार चुभ गया। उसने रोना शुरू किया। देवगिरि जी उसका मन बहलाने को अपने घर की तरफ़ ले गये, वह फिर भी शान्त न हुआ। वे उसे अपने घर के भीतर ले गये, वहाँ और भी ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा।

उसका वह रुदन ऊपर भागा ने सुना। उसे ऐसा जान पड़ा मानो उसकी पीड़ा को लेकर कोई और रोने लगा है। उसने ऊपर से साँकल झलझलाई। देवगिरि जी उसका मतलब समझ गये। उन्होंने अपने कमरे को अच्छी तरह भीतर से बन्द किया और बच्चे को लेकर ऊपर चढ़े।

बच्चे को देखते ही भागा उस पर टूट पड़ी और उसने देवगिरि जी की गोद से उसे छीन लिया। उसे देखते ही बच्चा चुप हो गया। भागा की बड़ी विचित्र दशा हो गई। मानो एक जन्म के दरिद्री को स्वर्ण-मणि मिल गई। मौन से उसकी वाणी तो बन्द थी ही, भावों की बाढ़ से उसकी साँस भी स्थिर हो उठी।

भागा उस बच्चे को कभी छाती से लगाती तो कभी उसका मुँह चूमती। उसकी छाती में दूध उमड़ आया। देवगिरि इस मिलन के करुण दृश्य को देखकर गद्‌गद् हो गये। इसी समय बाहर से किसी ने उन्हें आवाज़ देकर कहा—"कुछ कैलाश के यात्री आये हैं और एकाध दिन मन्दिर में ठहरना चाहते हैं। उन्होंने आपको बुलाया है।"

देवगिरि ने जाते हुए भागा से कहा—"मैं जा रहा हूँ, भीतर से द्वार बन्द कर लेना।"

देवगिरि चले गये दरवाज़े को भेड़कर। भागा अपने मिलन के हर्ष में द्वारों में साँकल चढ़ाना भूल गई। बाबा जी बाहर गये। उन्होंने अपने कमरे के द्वार लगाए, नीचे की साँकल भी चढ़ा दी। ताला उन्हें

मिला नहीं, वे जल्दी में थे। सोचा—"कौन आता है? अभी थोड़ी देर में खुद ही लौट आऊँगा।"

× × ×

रग्घू के मन में उस दिन की वह साँकल की झनकार बड़ी गहरी गड़ गई थी। उस झनकार में उसे कोई प्रिय और परिचित हाथ जान पड़ा। उस झनकार में उसे किसी की आवाज़ डूबी जान पड़ी जो उसे अव्यक्त भाषा में बुला रही थी। कई बार उसने उस साँकल बजाने वाले को देख आने के मनसूबे किये पर कृतकार्य न हो सका।

उस दिन उसके पिताजी कहीं निमन्त्रण में गये हुए थे, माता बिरादरी के किसी उत्सव में व्यस्त थी। रग्घू को मौका मिला और वह सड़क छोड़कर नदी के किनारे-किनारे बाबा जी के घर जा पहुँचा।

देवगिरि जी उस समय कैलाश के यात्रियों से मिलने गये थे। रग्घू ने बाहर के दरवाज़े की साँकल खोली और मकान में प्रविष्ट हो गया।

उसने स्वामी जी के कमरे में इधर-उधर देखा, कोई नज़र नहीं आया। उसने ऊपरी मंज़िल की ओर दृष्टि की। एक छोटे से बालक की बोली सुनी। वह तुरन्त ही ऊपर चढ़ गया। उसने धीरे-धीरे साँकल खोल द्वार थोड़ा-सा खोलकर भीतर झाँका। कमरे में अधिक उजाला नहीं था, पर उसे पहचानने में कोई देर न लगी।

उसने द्रुत-गति से द्वार खोल दिये और दौड़कर जाकर भागा के पैरों से लिपट गया—"दीदी! दीदी!!"

भागा उसे छुड़ाकर कमरे के अँधेरे भाग की तरफ़ दौड़ गई और मुँह में घूँघट डालकर बोली—"सीट्!"

"क्यों दीदी! ऐसी तो तुम कभी नहीं थीं। मैंने पहचान लिया है तुम्हें। तुम कब आईं बनारस से? झूठे ही तुम्हारे मरने की ख़बर उड़ा दी गई। मैं कहता न था तुम्हें कुछ नहीं हुआ है। लेकिन तुम हमारे यहाँ न आकर यहाँ क्यों इस अँधेरे कमरे में छिपी हो? यह बच्चा किसका है?"—कहते हुए रग्घु ने उसका घूँघट उलट दिया

भागा ने फिर घूँघट खींच लिया।

"हूँ, तुम बोलती क्यों नहीं ? मेरे पहचानने में ज़रा भी भूल नहीं हो सकती। बोलो दीदी ! बोलो ! मैं तुम्हें अब नहीं छोड़ सकता। मैं कितने दिनों से तुम्हें याद कर रहा हूँ। तुम क्यों मुझ से नाराज़ हो दीदी ? मुझ से अगर कोई अपराध हो गया हो तो मुझे माफ़ कर दो।"—रग्घू हाथ जोड़कर बोला। उसकी आँखें छलछला रही थीं।

भागा अब न छिपाकर रख सकी अपने को। उसके मौन का बाँध टूट गया और वह गद्गद् होकर बोली—"भैया, तुम अच्छे हो ?"

"हाँ दीदी, अच्छा ही हूँ, तुम कब आईं !"

"कब बताऊँ भैया ?"—भागा अपने आँसुओं की धारा को न सँभाल सकी। वह विचार की किसी गहराई में डूबी हुई थी।

"यह तुम्हारी गोद में कौन है ?"—रग्घु ने पूछा।

"भैया, तुम कुछ देर यहाँ बैठो मैं अभी आती हूँ, यह जिसका बालक है उसे दे आती हूँ। बाहर मत जाना, हाँ।"

"नहीं दीदी, पर तुम जल्दी आना।"

"हाँ।"—भागा बच्चे को लेकर वहाँ से नीचे उतर गई। बाहर का दरवाज़ा बन्द कर उसने उस पर साँकल चढ़ा दी और चारों ओर से सबकी नज़र बचाकर नदी की ओर गई और तेज़ी से देवीरौ की तरफ़ भागी।

उसी समय ब्रह्मदत्त जी देवगिरि जी के पास जाकर बोले—"यहाँ रग्घू भी आया है ?"

"नहीं तो।"

"आया है ! देखिए शायद आपके मकान की ओर !"

देवगिरि जी ने वहाँ ताला लगाया था नहीं यह देखने को चले उधर ब्रह्मदत्त जी के साथ। द्वार पर सिर्फ़ साँकल ही लगी थी, भीतर से ताला निकालने को जो द्वार खोला तो वहाँ रग्घू को बैठे हुए देखा।

दोनों आश्चर्य में पड़ गये और उनके आश्चर्य की कोई सीमा न

रही जब वह बोला—"दीदी ! दीदी !"

ब्रह्मदत्त ने पूछा—"कहाँ है दीदी ?"

"किसी के बालक को लौटाने गई हैं।"

देवगिरि ने नदी की ओर देखा भागा दौड़ी जा रही थी गोद में बिसन को लिये हुए। देवगिरि जी भागे उधर ही।

रघू ने भी देखा उस तरफ़ और पिता से कहा—"देखिये, वह जा रही है दीदी !"—रघू भी देवगिरि के पीछे-पीछे भागा।

ब्रह्मदत्त जी ने उसे रोकते हुए कहा—"ठहर ! तू कहाँ जा रहा है ?"

"दीदी को बुलाने जाता हूँ पिताजी, वह आज कितने दिन बाद आई है। आपने झूठ-मूठ ही मुझ से कह दिया था कि वह मर गई। वह मरी नहीं है पिताजी, वह दीदी ही है।"—जाते-जाते रघू बोला—"आप भी चलिए न, अभी सच्चाई आपको मालूम हो जायगी।"

ब्रह्मदत्त जी दौड़ने ही को थे कि पीछे से पानसिंह ने आकर उनका हाथ पकड़ लिया—"बाबाजी कहाँ हैं ?"

"वो नदी के किनारे दौड़े जा रहे हैं।"—रघू के पीछे दौड़ते हुए ब्रह्मदत्त जी बोले।

"मेरे बिसन की तबियत कैसी है ?"

जाते-जाते उन्होंने जवाब दिया—"उन्हीं से पूछो।"

पानसिंह भी उनके पीछे दौड़ने लगा।

कोई नहीं छू सका भागा को। वह बड़ी तेजी से देवीरौ के ऊपर के टीले में पहुँच गई। अपने आंचल में उसने बहुत से पत्थर बाँध लिये। उसका बच्चा रोने लगा था। उसने उसका मुख चूमकर कहा—"न रो. उस दिन इस कठोर धरती पर तुझे रख गई थी, कुछ भी दया-माया नहीं इसके। यह सिर्फ़ घृणा करना जानती है। चल, आज साथ-ही-साथ चलेंगे।"—भागा ने अपनी छाती खोलकर बच्चे के मुँह में दूध दे दिया वह चुप हो गया भागा ने दूर पर देखा—देवगिरि, रघू और

उसके पिता उस ओर दौड़े आ रहे हैं।

उसने फिर और विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं समझी। उसने सबको दूर से प्रणाम किया। फिर एक बार बच्चे के मुख का चुम्बन किया और देवीरौ के नीचे जल में कूद गई।

सबसे पहले देवगिरि ने दूर से उसे जल में कूदते हुए देखा। वे दौड़कर देवीरौ पर पहुँचे। इस बार निशाना अचूक था। कुछ एककेन्द्री वर्त्तुल जल के धरातल पर फैलकर मिट गये। देवगिरि ने छाती पर हाथ रखकर एक ठण्डी साँस ली—"हाय रे दुर्भाग्य!"

रग्घू हाँफता हुआ आकर पूछने लगा—"दीदी कहाँ है?"

देवगिरि ने जवाब दिया—"दीदी चली गई।"

"कहाँ चली गई?"

"जहाँ से आई थी।"

"क्या मर गई?"

"हाँ।"—देवगिरि ने बड़ी करुणा से देवीरौ की सघन नीलिमा पर दृष्टिपात करते हुए कहा। वे देख रहे थे कि भागा का शरीर ऊपर उठ आय।

"आप भी झूठ बोलते हैं बाबा जी। मैंने अभी देखा था।"

"वह उसका छाया-शरीर था—उस असूर्यपश्या का।"

ब्रह्मदत्त भी वहाँ आ पहुँचे थे। देवगिरि ने उनकी तरफ़ इशारा कर कहा—"पूछ लो इनसे।"

पानसिंह ने आकर पूछा—"बाबाजी मेरे बेटे की तबियत कैसी है?"

"पानसिंह, वह तुम्हारा बेटा नहीं था।"—देवगिरि ने स्पष्ट उत्तर दिया।

"फिर किसका था?"

"उसका जिसका नाम माता-पिता ने भाग्यवती रक्खा था पर समय ने जिसे बना दिया अभागिनी!